

# मनाचिये गुंती

समलिंगी मुलामुलींच्या  
पालकांचे अनुभव

संकलन : बिंदुमाधव चिरे



# **मनाचिये गुंती**

**‘गे’ मुलामुलींच्या पालकांच्या आत्मकथा**

**संकलन : बिंदुमाधव खिरे**

© या पुस्तकातील कोणताही मजकूर, कोणत्याही स्वरूपात वा माध्यमात  
पुनःप्रकाशित अथवा संग्रहित करण्यासाठी लेखक आणि प्रकाशक दोघांचीही  
लेखी पूर्वपरवानगी घेणे बंधनकारक आहे.

## मनाचिये गुंती

‘गे’ मुलामुलींच्या पालकांच्या आत्मकथा

संकलन : बिंदुमाधव खिरे

संकलन

बिंदुमाधव खिरे

प्रकाशक

समपथिक ट्रस्ट

१००४, बुधवार पेठ, ऑफिस नंबर ९,

(विजय मारुती चौकाजवळ)

पुणे - ४११ ००२

फोन - (०२०) ६४१७९११२

E-mail : samapathik@hotmail.com

अक्षरजुळणी, ले-आउट

चंद्रशेखर बेगमपुरे

मुख्यपृष्ठ

नीलम नागवेकर

आवृत्ती पहिली : मार्च २०१३

किंमत : रु. ९०/-

# मनाचिये गुंती

## ‘गे’ मुलामुलींच्या पालकांच्या आत्मकथा

### अनुक्रमणिका

सूची	०१
मनोगत	०२
ऋणनिर्देश	०८
प्रस्तावना - विवेक राज आनंद	०९
भाग एक - माहिती	
(१) वैद्यकीय - डॉ. भूषण शुक्ल	१७
(२) कायदा - श्री. भानुप्रताप बर्गे	२४
वरिष्ठ पोलिस निरीक्षक	

### भाग दोन - पालकांच्या आत्मकथा

(१) श्रीमती शकुंतला खिरे (बिंदुमाथवची आई)	२९
(२) श्री. अनिल (हर्षवर्धनचे बाबा)	३७
(३) श्रीमती कांचन कराणी (नितीनची आई)	५७
(४) श्रीमती मीरा (नेहाची आई)	६५
(५) श्रीमती शीतल समुद्र-देशमुख (समीरची ताई)	७१
(६) श्रीमती शमा (शाहिदची आई)	७८
(७) श्री. प्रल्हाद (अक्षयचा भाऊ)	८२
(८) श्रीमती अनामिका (अक्षयची आई)	८७
परिशिष्ट - (अ) अधिक वाचन	९०
(ब) मंस्था	९१

160  
161  
162  
163  
164  
165  
166  
167  
168  
169  
170  
171  
172  
173  
174  
175  
176  
177  
178  
179  
180  
181  
182  
183  
184  
185  
186  
187  
188  
189  
190  
191  
192  
193  
194  
195  
196  
197  
198  
199  
200  
201  
202  
203  
204  
205  
206  
207  
208  
209  
210  
211  
212  
213  
214  
215  
216  
217  
218  
219  
220  
221  
222  
223  
224  
225  
226  
227  
228  
229  
230  
231  
232  
233  
234  
235  
236  
237  
238  
239  
240  
241  
242  
243  
244  
245  
246  
247  
248  
249  
250  
251  
252  
253  
254  
255  
256  
257  
258  
259  
260  
261  
262  
263  
264  
265  
266  
267  
268  
269  
270  
271  
272  
273  
274  
275  
276  
277  
278  
279  
280  
281  
282  
283  
284  
285  
286  
287  
288  
289  
290  
291  
292  
293  
294  
295  
296  
297  
298  
299  
300  
301  
302  
303  
304  
305  
306  
307  
308  
309  
310  
311  
312  
313  
314  
315  
316  
317  
318  
319  
320  
321  
322  
323  
324  
325  
326  
327  
328  
329  
330  
331  
332  
333  
334  
335  
336  
337  
338  
339  
340  
341  
342  
343  
344  
345  
346  
347  
348  
349  
350  
351  
352  
353  
354  
355  
356  
357  
358  
359  
360  
361  
362  
363  
364  
365  
366  
367  
368  
369  
370  
371  
372  
373  
374  
375  
376  
377  
378  
379  
380  
381  
382  
383  
384  
385  
386  
387  
388  
389  
390  
391  
392  
393  
394  
395  
396  
397  
398  
399  
400  
401  
402  
403  
404  
405  
406  
407  
408  
409  
410  
411  
412  
413  
414  
415  
416  
417  
418  
419  
420  
421  
422  
423  
424  
425  
426  
427  
428  
429  
430  
431  
432  
433  
434  
435  
436  
437  
438  
439  
440  
441  
442  
443  
444  
445  
446  
447  
448  
449  
450  
451  
452  
453  
454  
455  
456  
457  
458  
459  
460  
461  
462  
463  
464  
465  
466  
467  
468  
469  
470  
471  
472  
473  
474  
475  
476  
477  
478  
479  
480  
481  
482  
483  
484  
485  
486  
487  
488  
489  
490  
491  
492  
493  
494  
495  
496  
497  
498  
499  
500  
501  
502  
503  
504  
505  
506  
507  
508  
509  
510  
511  
512  
513  
514  
515  
516  
517  
518  
519  
520  
521  
522  
523  
524  
525  
526  
527  
528  
529  
530  
531  
532  
533  
534  
535  
536  
537  
538  
539  
540  
541  
542  
543  
544  
545  
546  
547  
548  
549  
550  
551  
552  
553  
554  
555  
556  
557  
558  
559  
550  
551  
552  
553  
554  
555  
556  
557  
558  
559  
560  
561  
562  
563  
564  
565  
566  
567  
568  
569  
560  
561  
562  
563  
564  
565  
566  
567  
568  
569  
570  
571  
572  
573  
574  
575  
576  
577  
578  
579  
580  
581  
582  
583  
584  
585  
586  
587  
588  
589  
580  
581  
582  
583  
584  
585  
586  
587  
588  
589  
590  
591  
592  
593  
594  
595  
596  
597  
598  
599  
590  
591  
592  
593  
594  
595  
596  
597  
598  
599  
600  
601  
602  
603  
604  
605  
606  
607  
608  
609  
600  
601  
602  
603  
604  
605  
606  
607  
608  
609  
610  
611  
612  
613  
614  
615  
616  
617  
618  
619  
610  
611  
612  
613  
614  
615  
616  
617  
618  
619  
620  
621  
622  
623  
624  
625  
626  
627  
628  
629  
620  
621  
622  
623  
624  
625  
626  
627  
628  
629  
630  
631  
632  
633  
634  
635  
636  
637  
638  
639  
630  
631  
632  
633  
634  
635  
636  
637  
638  
639  
640  
641  
642  
643  
644  
645  
646  
647  
648  
649  
640  
641  
642  
643  
644  
645  
646  
647  
648  
649  
650  
651  
652  
653  
654  
655  
656  
657  
658  
659  
650  
651  
652  
653  
654  
655  
656  
657  
658  
659  
660  
661  
662  
663  
664  
665  
666  
667  
668  
669  
660  
661  
662  
663  
664  
665  
666  
667  
668  
669  
670  
671  
672  
673  
674  
675  
676  
677  
678  
679  
670  
671  
672  
673  
674  
675  
676  
677  
678  
679  
680  
681  
682  
683  
684  
685  
686  
687  
688  
689  
680  
681  
682  
683  
684  
685  
686  
687  
688  
689  
690  
691  
692  
693  
694  
695  
696  
697  
698  
699  
690  
691  
692  
693  
694  
695  
696  
697  
698  
699  
700  
701  
702  
703  
704  
705  
706  
707  
708  
709  
700  
701  
702  
703  
704  
705  
706  
707  
708  
709  
710  
711  
712  
713  
714  
715  
716  
717  
718  
719  
710  
711  
712  
713  
714  
715  
716  
717  
718  
719  
720  
721  
722  
723  
724  
725  
726  
727  
728  
729  
720  
721  
722  
723  
724  
725  
726  
727  
728  
729  
730  
731  
732  
733  
734  
735  
736  
737  
738  
739  
730  
731  
732  
733  
734  
735  
736  
737  
738  
739  
740  
741  
742  
743  
744  
745  
746  
747  
748  
749  
740  
741  
742  
743  
744  
745  
746  
747  
748  
749  
750  
751  
752  
753  
754  
755  
756  
757  
758  
759  
750  
751  
752  
753  
754  
755  
756  
757  
758  
759  
760  
761  
762  
763  
764  
765  
766  
767  
768  
769  
760  
761  
762  
763  
764  
765  
766  
767  
768  
769  
770  
771  
772  
773  
774  
775  
776  
777  
778  
779  
770  
771  
772  
773  
774  
775  
776  
777  
778  
779  
780  
781  
782  
783  
784  
785  
786  
787  
788  
789  
780  
781  
782  
783  
784  
785  
786  
787  
788  
789  
790  
791  
792  
793  
794  
795  
796  
797  
798  
799  
790  
791  
792  
793  
794  
795  
796  
797  
798  
799  
800  
801  
802  
803  
804  
805  
806  
807  
808  
809  
800  
801  
802  
803  
804  
805  
806  
807  
808  
809  
810  
811  
812  
813  
814  
815  
816  
817  
818  
819  
810  
811  
812  
813  
814  
815  
816  
817  
818  
819  
820  
821  
822  
823  
824  
825  
826  
827  
828  
829  
820  
821  
822  
823  
824  
825  
826  
827  
828  
829  
830  
831  
832  
833  
834  
835  
836  
837  
838  
839  
830  
831  
832  
833  
834  
835  
836  
837  
838  
839  
840  
841  
842  
843  
844  
845  
846  
847  
848  
849  
840  
841  
842  
843  
844  
845  
846  
847  
848  
849  
850  
851  
852  
853  
854  
855  
856  
857  
858  
859  
850  
851  
852  
853  
854  
855  
856  
857  
858  
859  
860  
861  
862  
863  
864  
865  
866  
867  
868  
869  
860  
861  
862  
863  
864  
865  
866  
867  
868  
869  
870  
871  
872  
873  
874  
875  
876  
877  
878  
879  
870  
871  
872  
873  
874  
875  
876  
877  
878  
879  
880  
881  
882  
883  
884  
885  
886  
887  
888  
889  
880  
881  
882  
883  
884  
885  
886  
887  
888  
889  
890  
891  
892  
893  
894  
895  
896  
897  
898  
899  
890  
891  
892  
893  
894  
895  
896  
897  
898  
899  
900  
901  
902  
903  
904  
905  
906  
907  
908  
909  
900  
901  
902  
903  
904  
905  
906  
907  
908  
909  
910  
911  
912  
913  
914  
915  
916  
917  
918  
919  
910  
911  
912  
913  
914  
915  
916  
917  
918  
919  
920  
921  
922  
923  
924  
925  
926  
927  
928  
929  
920  
921  
922  
923  
924  
925  
926  
927  
928  
929  
930  
931  
932  
933  
934  
935  
936  
937  
938  
939  
930  
931  
932  
933  
934  
935  
936  
937  
938  
939  
940  
941  
942  
943  
944  
945  
946  
947  
948  
949  
940  
941  
942  
943  
944  
945  
946  
947  
948  
949  
950  
951  
952  
953  
954  
955  
956  
957  
958  
959  
950  
951  
952  
953  
954  
955  
956  
957  
958  
959  
960  
961  
962  
963  
964  
965  
966  
967  
968  
969  
960  
961  
962  
963  
964  
965  
966  
967  
968  
969  
970  
971  
972  
973  
974  
975  
976  
977  
978  
979  
970  
971  
972  
973  
974  
975  
976  
977  
978  
979  
980  
981  
982  
983  
984  
985  
986  
987  
988  
989  
980  
981  
982  
983  
984  
985  
986  
987  
988  
989  
990  
991  
992  
993  
994  
995  
996  
997  
998  
999  
990  
991  
992  
993  
994  
995  
996  
997  
998  
999  
1000

# मनाचिये गुंती

## सूची

होमोसेक्शुअल/गे	: समलिंगी व्यक्ती
लेस्बियन	: समलिंगी स्त्री
एमएसएम (MSM)	: पुरुषांबरोबर लैंगिक संबंध करणारे पुरुष (Men who have Sex with Men)
होमोफोबिया	: समलिंगी व्यक्तीची, समलिंगी जीवनशैलीची भीती व त्यातून उत्पन्न होणारा द्वेष
बायसेक्शुअल	: उभयलिंगी व्यक्ती
हेटरोसेक्शुअल/स्ट्रॉट	: भिन्नलिंगी व्यक्ती
आउट (Out)	: आपण समलिंगी आहोत हे इतरांना सांगणे
क्लोजेट (Closet)	: आपण समलिंगी आहोत हे इतरांपासून लपवणे
रिसेप्टिव्ह जोडीदार/बॉटम	: लैंगिक संबंधातील स्वीकृत जोडीदार
इन्स्टिव्ह जोडीदार/टॉप	: लैंगिक संबंधात पुरुषाची भूमिका घेणारा जोडीदार

## मनोगत

मी बिंदुमाधव खिरे. पुण्यात एका मध्यमवर्गीय, सनातनी, धार्मिक कुटुंबात वाढलो. वयात आल्यावर मला पुरुषांबद्दल भावनिक व शारीरिक आकर्षण वाटू लागलं. स्त्रियांबद्दल अजिबात आकर्षण वाटत नव्हतं. (तेव्हा 'समलिंगी' हा शब्द माहीत नव्हता.) इतर मित्रांसारखं मला स्त्रिया आवडत नाहीत, पुरुष आवडतात या गोष्टीचा मला खूप त्रास झाला. मी या इच्छांना पाप समजायचो. साहजिकच याचा माझ्या स्वप्रतिमेवर, आकांक्षांवर परिणाम झाला. माझा आत्मविश्वास खचला. खूप नैराश्य आलं. आत्महत्या करावी असा विचार मनात आला. मी स्वतःचा द्वेष करू लागलो. पुढे स्त्रीशी लग्न झालं, वर्षात घटस्फोट झाला.

अंदाजे १९९८-१९९९ मध्ये अमेरिकेत असताना (मी कम्प्युटर सायन्स इंजिनिअर होतो व काही वर्ष अमेरिकेत नोकरीसाठी होतो) मी सॅन फ्रॅन्सिस्कोतील 'त्रिकोण' नावाच्या समलिंगी आधार संस्थेची मदत घेतली. मला या संस्थेत माझ्यासारखे अनेक भारतीय समलिंगी पुरुष भेटले. त्यांच्या सहवासात मी स्वतःला स्वीकारायला लागलो. माझ्या मनावरचं ओङ्गं उतरलं. माझ्यामध्ये कमालीचा फरक पडला. २०००च्या सुरुवातीला मी कायमचा पुण्यात आलो.

घरचे माझ्या दुसऱ्या लग्नाचा विचार करत होते. (तोवर घरच्यांना मी समलिंगी आहे हे माहीत नव्हतं.) मी पुण्यात आल्या आल्या त्यांना सत्य सांगितलं. त्यांना खूप धक्का बसला. आईनी साधूंची/बाबांची मदत घेतली. वडिलांनी मी गेल्या जन्माचं पाप आहे असं स्पष्ट सांगितलं. मी आईला मानसोपचारतज्जांकडे घेऊन गेलो. त्यांनी तिची समजूत काढली, की माझ्यात काहीही दोष नाही, काही कमी नाही. तेव्हा

हळूहळू मी बदलेन ही तिची आशा विरली. आता दुसरा पर्याय नाही, हे दिसल्यावर ती मला स्वीकारायचा प्रयत्न करू लागली. मी आईवडिलांबरोबर राहत असलो तरी वडील मात्र माझ्याशी या विषयावर आजही काही बोलत नाहीत, पण मला विरोधही करत नाहीत.

पुण्यात आल्यावर काही काळानी मी नोकरी सोडली व सप्टेंबर २००२मध्ये 'समपथिक ट्रस्ट' ही समलिंगी, ट्रान्सजेंडर, हिजडे व इंटरसेक्स व्यक्तींसाठी संस्था सुरु केली.

हे काम करताना सातत्यानी जाणवत होतं, की या विषयावर मराठी लिखाण जवळजवळ नगण्य आहे. म्हणून 'पार्टनर', 'इंद्रधनू-समलैंगिकतेचे विविध रंग', 'लैंगिक शिक्षण, एचआयब्ही/एड्स हेल्पलाइन मार्गदर्शिका', 'मानवी लैंगिकता- एक प्राथमिक ओळख' ही पुस्तकं लिहिली. या वंचित समाजाबद्दल असलेल्या अन्य समाजाच्या पूर्वग्रहदूषित दृष्टीत बदल व्हावा, या समाजाला त्यांचे अधिकार मिळून, त्यांना ताठ मानेनं समाजात वावरता यावं, या उद्देशानं ही पुस्तकं लिहिण्याचा खटाटोप केला.

११ डिसेंबर २०११ला पुण्यात पहिल्यांदा समलिंगी, ट्रान्सजेंडर, हिजडे, इंटरसेक्स यांचा 'अभिमान मोर्चा' काढला ('गे प्राइड परेड'). या नंतर वाटू लागलं, की आता नुसतं पुण्यापुरतं काम मर्यादित न ठेवता, महाराष्ट्रातील अशा सर्व व्यक्तींसाठी काहीतरी काम करावं.

लोक ज्या ज्या समाजाची थद्वा करतात, ज्यांचा द्वेष करतात, ज्यांना मुख्य प्रवाहातून बहिष्कृत करतात, त्यांची माणूस म्हणून ओळख समाजाला व्हावी या दृष्टिकोनातून काही पुस्तकांचं संकलन करायचा मी विचार केला.

## पुस्तके-

- समलिंगी मुलांच्या पालकांच्या आत्मकथा.
- समलिंगी व्यक्तींच्या आत्मकथा.
- ट्रान्सजेंडर व हिजडे यांच्या आत्मकथा.
- इंटरसेक्स व्यक्तींच्या आत्मकथा.

या शृंखलेतलं हे पहिलं पुस्तक.

## या पुस्तकाबद्दल -

‘समलिंगी’ या शब्दाचा अर्थ काय?

वयात आल्यावर कोणत्या लिंगाच्या व्यक्तीबद्दल भावनिक व लैंगिक आकर्षण जाणवतं तो आपला लैंगिक कल (Sexual Orientation) असतो. अनेक मुलांना लैंगिक व भावनिक आकर्षण फक्त मुलींबद्दलच जाणवतं, तसंच अनेक मुलींना लैंगिक व भावनिक आकर्षण फक्त मुलांबद्दलच जाणवतं. अशा विरुद्ध लिंगाच्या व्यक्तींबद्दल भावनिक व लैंगिक आकर्षणाला ‘भिन्नलिंगी लैंगिक कल’ म्हणतात.

काही मुलांना लैंगिक व भावनिक आकर्षण काही मुलांबद्दल व काही मुलींबद्दल जाणवतं. तसंच काही मुलींना भावनिक व लैंगिक आकर्षण काही मुलांबद्दल व मुलींबद्दल जाणवतं, अशा दोन्ही लिंगाच्या व्यक्तींबद्दल भावनिक व लैंगिक आकर्षण असण्याला ‘उभयलिंगी लैंगिक कल’ म्हणतात.

काही मुलांना लैंगिक व भावनिक आकर्षण फक्त मुलांबद्दलच जाणवतं. तसंच काही मुलींना लैंगिक व भावनिक आकर्षण फक्त मुलींबद्दलच जाणवतं, अशा समान लिंगाच्या व्यक्तींबद्दल भावनिक व लैंगिक आकर्षण असण्याला ‘समलिंगी लैंगिक कल’ म्हणतात.

हल्ली बहुतांशी वेळा 'समलिंगी' व्यक्तींसाठी 'गे' हा शब्द वापरला जातो.

समलिंगी शब्दाव्यतिरिक्त मराठीत अनेक शब्द आहेत, जे समलिंगी व्यक्तींसाठी वापरले जातात. हे सर्व शब्द हिणकस, तुच्छता दर्शवणारे, थड्हेने वापरलेले शब्द आहेत. उदा., गांडू, बुळ्या, बुळ्या.

मी जेव्हा 'गे' आहे हे माझ्या आईला सांगितलं तेव्हा तिला या विषयाबद्दल काहीही माहिती नव्हती. जसं मला माझ्या 'गे' मित्रांचा, 'गे' लोकांबरोबर काम करणाऱ्या संस्थांचा आधार होता, तसा माझ्या आईला या नव्या परिस्थितीला सामोरं जाण्यासाठी कोणताच आधार नव्हता. नातेवाईक काय म्हणतील? समाज काय म्हणेल? या भीतीपोटी तिला कोणापाशीच ही गोष्ट बोलता येत नव्हती. त्यामुळे या परिस्थितीचा सामना कसा करायचा हे तिला कळत नव्हतं. इतर 'गे' मुलांच्या पालकांच्या मनात काय विचार आले, त्यांनी त्याकडे कसं बघितलं, त्यांना त्याचा किती त्रास झाला, दुःख झालं, सावरायला किती वेळ लागला हे कळायला काहीही मार्ग नव्हता. असं असतानासुद्धा ती मला हळूहळू स्वीकारू लागली. आता ती मला पूर्णपणे स्वीकारते.

या अनुभवातून लक्षात आलं, की मुलं जेव्हा पालकांना सांगतात, की मी 'गे' आहे तेव्हा पालक घाबरतात, बावचळतात. ते एका वेगळ्या पिढीचे असतात, बहुतेकांना हा विषय अनभिज्ञ असतो. अनेकजण सनातनी वातावरणात वाढलेले असतात. अशा परिस्थितीत पालकांचा कोँडमारा होतो. बरंच काही बोलायचं असतं, मनात अनेक प्रश्न असतात, पण कोणाशी बोलायचं हेच कळत नाही.

अनेक धर्मग्रंथांत समलैंगिकतेला पाप मानले आहे. या बाबतीत सर्व धर्मात समभाव दिसतो. म्हणून अनेक धार्मिक पालकांना समलैंगिकता पाप वाटते.

काही पालकांचा समज आहे, की समलैंगिकता भारतात नव्हती, ते

पाश्चात्य फॅड आहे. पालक विसरतात (किंवा त्यांना सांगितलेलं नाही), की अनेक भारतीय प्राचीन ग्रंथांत समलैंगिकतेचे उल्लेख आहेत. उदा., ‘मनुस्मृती’, ‘नारदस्मृती’, ‘कामसूत्र’ इत्यादी. काही प्राचीन देवळांवरची शिल्पं समलिंगी संबंध दर्शवितात. समलैंगिकता परदेशातून आलेली नाही, परदेशातून आली ती मानवी अधिकारांची जाण, त्यांच्या चळवळीतून मिळालेले प्रोत्साहन, हिंमत.

अनेकांचं मत आहे, की निसर्गात असे संबंध दिसत नाहीत म्हणून ते अनैसर्गिक आहेत. हेही चूक, कारण अनेक प्राणी, पक्ष्यांमध्ये समलिंगी संबंध दिसतात.

काहींचा समज असतो, की काही पुरुषांमध्ये, पुरुषांचे मानले गेलेल्या संप्रेरकांचे (हार्मोन्सचे) प्रमाण कमी असते व स्त्रियांचे मानले गेलेल्या संप्रेरकांचे प्रमाण जास्त असते म्हणून तो पुरुष समलिंगी जीवनशैली जगतो. हाही गैरसमज आहे. इतर (भिन्नलिंगी) पुरुषांमध्ये आणि माझ्या किंवा इतर समलिंगी पुरुषांमध्ये असे कोणतेही ‘हार्मोनल’ वैविध्य शास्त्रीय अभ्यासात आढळून आलेले नाही.

काहींचा गैरसमज आहे, की लहानपणी मुलांचे लैंगिक शोषण झाले तर ते समलिंगी बनतात. माझ्या व अनेक ‘गे’ मुलामुलींचे लैंगिक शोषण झालेले नाही तरी आम्ही समलिंगी आहोत.

या अशा अनेक गोष्टी पालकांच्या मनात येतात, पण बोलायचे कोणाशी, माहिती कोणाकडे मागायची हे कळत नाही.

काहीजण ज्योतिषाचा, साधू/बाबांचा आधार घेतात. याचा अर्थातच काही उपयोग होत नाही. काहीजण मानसोपचारतज्ज्ञांचा आधार घेतात; पण अनेक मानसोपचारतज्ज्ञ हे समलिंगीद्वेष्ये असल्यामुळे ते पालकांना चुकीचं मार्गदर्शन, सल्ला देतात. यामुळे प्रश्न अजूनच गंभीर होतो. त्या ‘गे’ मुलामुलीचं अजूनच नुकसान होतं.

गेली १० वर्ष या गोष्टी वारंवार माझ्यासमोर येत असल्यामुळे ‘गे’

मुलांच्या पालकांसाठी मी या आत्मकथांचं संकलन करायचं ठरवलं. अर्थातिच या प्रकल्पाला पालकांचा प्रतिसाद कमी होता. अनेक पालकांनी मुलामुलीला ‘गे’ म्हणून स्वीकारलं असलं तरी त्यांची या विषयावर उघडपणे बोलायची तयारी नव्हती. म्हणून फार थोड्या गोष्टी संकलित करू शकलो.

जसा काळ झापाट्याने बदलतो आहे, तसतशा अधिकाधिक समलिंगी व्यक्ती उघडपणे आम्ही ‘गे’ आहोत हे सांगू लागल्या आहेत. उघडपणे आपले अधिकार मागू लागल्या आहेत. जगाला सांगू लागल्या आहेत, की आम्ही तुमच्यासारखीच माणसे आहोत. आम्हालाही मानाने जगायचा अधिकार आहे. पण जगाने स्वीकारायच्या अगोदर सर्व ‘गे’ मुलामुलींची इच्छा असते, की आपल्या जवळच्या मंडळींनी त्यांचा स्वीकार करावा. घरच्यांचा आधार असेल, तर सर्व जगाचा विरोध सोसता येतो, पण घरच्यांचाच आधार नसेल तर कोणाकडे बघायचे? हा अत्यंत मोलाचा आधार नव्या पिढीच्या ‘गे’ मुलामुलींना त्यांच्या पालकांकडून मिळावा म्हणून त्या दिशेने टाकलेलं हे एक छोटंसं पाऊल.

हे पुस्तक लिहिताना काही महत्त्वाच्या गोष्टी विचारात घेतल्या-

- ज्या पालकांना आपले खरे नाव द्यायचे त्यांनी ते द्यावे व ज्यांना खरे नाव देणे शक्य नाही त्यांनी टोपणनावानी लिहावे हे सुचवले.
- लिहिणारी/सांगणारी व्यक्ती निदान पाच वर्ष महाराष्ट्रात राहिलेली असावी, जेणेकरून महाराष्ट्रातील संस्कृतीची छाप त्यांच्या आत्मकथेत उतरेल.
- गोष्ट लिहिताना प्रामाणिकपणा अत्यंत महत्त्वाचा मानला गेला.
- गोष्ट छापण्यासाठी प्रत्येक लेखकाकडून एक संमतीपत्रक घेतले.

बिंदुमाधव खिरे  
मार्च २०१३

## त्रज्णनिर्देश

या गोष्टी संकलित करण्यास अनेक जणांची मदत झाली. सर्वप्रथम या पुस्तकासाठी ज्यांनी आपल्या आत्मकथा सांगितल्या त्यांचा मी मनापासून आभारी आहे.

डॉ. भूषण शुक्ल, वरिष्ठ पोलिस निरीक्षक श्री. भानुप्रताप बर्गे यांनी मुलाखती दिल्या. विवेक राज आनंद यांनी वेळात वेळ काढून प्रस्तावना लिहिली. नीलम नागवेकर यांनी मुख्यपृष्ठ रेखीत केलं. चंद्रशेखर बेगमपुरे यांनी डी.टी.पी. व पुस्तकाचा ले-आउट केला. माधुरी चव्हाण यांनी व्याकरण व शुद्धलेखन तपासलं. अरविंद नारायण व डेव्हिड यांनी कायदेशीर बाबींवर मदत केली. पुस्तकाच्या इतर कामात परीक्षित शेटे व ऑफसाइड एन्टरप्रायजेसच्या शोभना कुमार यांनी मदत केली.

या उपक्रमात हमसफर ट्रस्टचे अशोक राव कवी व विवेक राज आनंद माझ्या पाठीशी उभे राहिले. मी या कामात व्यस्त असताना माझे प्रोजेक्ट डायरेक्टर टिनेश चोपडे यांनी समपथिक ट्रस्ट (मी स्थापन केलेली संस्था) समर्थपणे व मनापासून सांभाळली. या सर्वांचे आभार मानावे तेवढे कमीच आहेत.

\*\*\*\*\*

## प्रस्तावना

तारुण्यात आल्यावर आपण समलिंगी आहोत याची जाण होणे, कालांतराने आपल्या लैंगिकतेचा स्वीकार करणे, हा प्रवास आपल्या सर्वांच्या वाट्याला येतो. अनेकजण मात्र हा प्रवास करतच नाहीत; पण मला असे वाटते, की तो अपरिहार्य असतो. आयुष्यात एकवेळ येते, की आपल्याला आपण कोण आहोत हा प्रश्न पडतो आणि त्याचे उत्तर असते- आपण स्वतःला प्रामाणिकपणे सांगणे, की ‘मी समलिंगी आहे’.

हे सत्य स्वीकारणे आयुष्यांच्या कोणत्याही टप्प्यात होऊ शकते, कोणत्याही वयात होऊ शकते. काहीजण हे सत्य लवकर स्वीकारतात तर काहीजणांना खूप वेळ लागतो, पण शेवटी ते सत्य स्वीकारावे लागतेच.

स्वतःचा स्वीकार करायची सुरुवात होते ती स्वतःला सांगून, की ‘इट्स ओके टु बी गे.’ अर्थात हे स्वीकारल्यावर समोर असंख्य प्रश्न उभे राहतात. माझ्या पालकांना कळले तर काय होईल? माझ्या आईबाबांची प्रतिक्रिया काय असेल? माझे मित्र माझ्याबद्दल काय विचार करतील? ऑफिसमध्ये/कॉलेजमध्ये माझे सहकारी माझी थड्डा करतील का? हे सर्व प्रश्न पडणे स्वाभाविक आहे, पण आपण आपल्या लैंगिकतेचा स्वीकार केला असेल तर या सत्याचा अपराधीपणा वाटायचं काही कारण नाही. जर आपण स्वीकारलं असेल, की आपल्याला निसर्गने असे बनवले आहे आणि आपण या निसर्गाचा एक भाग आहोत; आपला लैंगिक कल वेगळा आहे, पण याचा अर्थ आपण विकृत नाही; आपण चारचौघांसारखे आहोत, तर हे प्रश्न सोडवताना या जगाकडे बघायचा आपला दृष्टिकोन बदलू लागतो. आपण मोकळेपणाने या सर्व गोष्टींबद्दल बोलू लागतो.

आपले आईवडील हे आपल्या आयुष्याचा अविभाज्य भाग आहेत. आपण त्यांच्यावर खूप प्रेम करतो आणि त्यांना सत्य सांगणे हे आपले कर्तव्य आहे. आपल्याला माहीत असते, की त्यांना हे सत्य

कळल्यावर ते दुःखी होतील, पण आपण आशा करतो, की ते समजून घेतील, आपल्याला माया लावतील. त्यांना आपली लैंगिकता स्वीकारायला वेळ लागेल, पण कालांतराने ते स्वीकारतील.

जर आपल्याला स्वतःला स्वीकारायला वेळ लागला, आपल्याला इथवर प्रवास करायला वेळ लागला, तर स्वाभाविक आहे, की त्यांनाही आपल्याला स्वीकारायला वेळ लागणार आहे. जी तरुण मुले/मुली आपल्या पालकांना आपल्या लैंगिकतेबद्दल सांगतात त्या तरुण मुलांना/मुलींना मी आवर्जून सांगतो, की तुम्ही स्वतःला स्वीकारायचा प्रवास केला आहे, आता तुमची लैंगिकता स्वीकारायच्या प्रवासात तुम्ही तुमच्या पालकांचा हात धरला पाहिजे. त्यांच्यासाठी हा प्रवास अनपेक्षित आहे आणि या प्रवासासाठी त्यांच्या मनाची तयारी झालेली नाही. त्यांना सांगितल्यावर आपला प्रवासाचा मोठा टप्पा संपतो, पण त्यांचा प्रवास त्या क्षणी सुरु होतो. हा प्रवास दोघांसाठी स्वतंत्र नाही. त्यांच्या प्रवासाचे आपण भागीदार आहोत.

मी लहानाचा मोठा होताना माझां माझ्या आईशी दृढ नातं होतं. ती माझा आधारस्तंभ होती आणि ती मला माझ्या परीने आयुष्य जगायचं खूप धैर्य द्यायची. तिचे वाचन प्रगाढ होते. त्यातील ज्ञानातून ती समृद्ध झाली. तिला इंग्लिश, मराठी, हिंदी, गुजराती भाषा यांच्या आणि या सर्व भाषांमध्ये उत्तमोत्तम साहित्य ती वाचायची. ती अनेकवेळा आपल्या समाजातील स्त्रियांच्या प्रश्नांबद्दल बोलायची. ती म्हणायची, आपल्या समाजातील स्त्रियांना पुरुषांइतका समान दर्जा मिळत नाही. त्यांना संधी कमी मिळतात. तिला याचा अनुभव होता, कारण वयाच्या १६व्या वर्षापासून तिने तिच्या कुटुंबाला आर्थिकदृष्ट्या हातभार लावला. तिचा भाऊ इंजिनिअरिंग करत होता, तेव्हा ती शिकवण्या घेऊन घरी पैसे द्यायची. स्त्रियांचा आदर करणे, त्यांना समान मानणे हे तिने मला शिकवले. आमचं नातं खरंतर शब्दात वर्णन करता येत नाही. ती माझ्यासाठी जगातली सर्वांत चांगली आई होती आणि तरीही मी तिला

सांगू शकत नव्हतो, की मी ‘गे’ आहे. वयाच्या २१व्या वर्षी मी तिला सांगू शकत नव्हतो, की जो माझा जिवलग मित्र आहे, तो जवळजवळ ३ वर्ष माझा बॉयफ्रेंड आहे.

ती मला सारखी विचारायची, की मला गर्लफ्रेंड्स नाहीत का? पण मला कधीच मुलींमध्ये रस नव्हता. मी तिला सांगायचो, की माझ्या सर्व गर्लफ्रेंड्स माझ्या खूप चांगल्या मैत्रिणी आहेत आणि अनेकजणी माझ्या राखीबहिणी आहेत. ती हसायची आणि म्हणायची, की या जिवलग मित्रापलीकडे जरा नजर टाक आणि एखादी गर्लफ्रेंड मिळव.

मला तो दिवस अगदी स्पष्ट आठवतोय, माझ्या जिवलग मित्राचे आणि माझे भांडण झाले. मी घरी आलो, कोणाशी बोललो नाही. मी बेडरूममध्ये गेलो (आमच्या पाच जणांच्या कुटुंबात एकच बेडरूम होती.) आणि रडायला लागलो. माझी आई बेडरूममध्ये आली, तिने माझे डोके तिच्या मांडीवर ठेवले आणि विचारले, “काय झाले?” मी तिला माझ्या जिवलग मित्राबरोबर झालेल्या भांडणाबद्दल सांगितले. तिने नीट ऐकून घेतले व पुढची काही मिनिटे काहीही बोलली नाही. शेवटी म्हणाली, “तुझ्यासाठी तो कोण आहे?” मी खूप बावचळलो, काय उत्तर द्यायचं ते कळेना, मी तेव्हाही तिला सत्य सांगू शकत नव्हतो आणि सांगितले, “तो माझा जगातील सर्वांत जवळचा मित्र आहे.” ती म्हणाली, “तो जगातील सर्वांत जवळचा तुझा मित्र आहे हे ठीक आहे, पण तुझ्या आयुष्यात त्याचं स्थान जिवलग मित्राच्या पलीकडचं असेल तर तुझं आयुष्य सोपं नसणार आहे, हा प्रवास खूप खडतर असणार आहे. जर तो तुझ्यासाठी जिवलग मित्रापेक्षा जास्त जवळचा असेल तर तू सत्य स्वीकार आणि मनाची तयारी कर, की वाट खडतर असणार आहे आणि हे जग तुला साथ देणार नाही, तुला जवळ करणार नाही.” मी एकही शब्द बोललो नाही, फक्त हमसून हमसून रडत राहिलो. ती माझ्या केसांवरून हात फिरवत राहिली, म्हणत राहिली, “अरे पागल, सब ठीक हो जाएगा,.... रोता क्यू है?” त्या दुपारी आमचं नातं खूप दृढ झालं.

माझ्या आईच्या आधारामुळे मी स्वतःला धाडसाने स्वीकारायला लागलो. त्यानंतर मी 'गे' असल्याचा विषय निघाला नाही. दुर्दैवाने लवकरच माझी आई वारली आणि मी परत पोरका झालो.

माझ्या बॉयफ्रेंडनं एका स्त्रीशी लग्न केलं. माझं त्याच्याशी असलेलं ९ वर्षांचं नातं संपुष्टात आलं. माझ्या आयुष्यातला हा सर्वांत वाईट काळ होता. माझ्या वेदना कोणाला सांगणार? 'लग्न कर' म्हणून घरून दबाव वाढत होता, पण मला माहीत होतं, की मी स्त्रीशी कधीही लग्न करणार नाही.

१९९१ला मी मुंबईतील एका 'बिझेस स्कूल'मधून ग्रॅज्युएट झालो. माझ्या बॉयफ्रेंडचं लग्न झालं होतं. माझी आई या जगात नव्हती. मी ३० वर्षांचा होतो, 'गे' होतो. या परिस्थितीला सामोरं जाण्याशिवाय पर्याय नव्हता.

सगळ्यात पहिल्यांदा मी माझ्या भावाला सांगितलं. मी सरळ त्याच्या ऑफिसमध्ये गेलो, त्याच्याशेजारी बसलो आणि त्याला म्हणालो, "भाई, तुझी प्रतिक्रिया काय असेल, जर मी तुला सांगितलं; की मी 'गे' आहे." त्याला धक्का बसला. त्याच्या स्वप्नातही असं काही कधी आलं नव्हतं. खरंतर मी त्याचा धाकटा भाऊही होतो व त्याचा हिरोही होतो. माझ्या सर्व जवळच्या मैत्रिणी चांगल्या दिसणाऱ्या होत्या आणि त्याला वाटायचे, की माझे या सर्वांशी लैंगिक संबंध आहेत. मी या मुलीबरोबर मजा मारतोय. त्याने सावरायला थोडा वेळ घेतला आणि मग म्हणाला, "काहीही असो, तू मला करण (त्याचा मुलगा) इतकाच जवळचा आहेस". पुढे म्हणाला, "ही गोष्ट तू वडिलांना किंवा भाभीला सांगूनकोस."

कालांतराने त्याने माझ्या लैंगिकतेबद्दल माझ्या भाभीला सांगितलं. पुढे या विषयाबद्दल अशोक (अध्यक्ष, द हमसफर ट्रस्ट) माझ्या वडिलांशी बोलला. हे खरंतर अनाहूतपणे घडलं. अशोकचा फोटो 'बॉम्बे टाइम्स'मध्ये आला होता. त्या फोटोत त्याच्या हातात ७५००

यू.एस. डॉलर्सचा 'ई.टी. फाउंडेशन'ने दिलेला चेक होता. माझ्या वडिलांनी हे चित्र पाहिले आणि भावाला विचारले, "ही तीच व्यक्ती आहे का जिच्याशी विवेकची मैत्री आहे?" भाऊ म्हणाला, "हो" त्यावर वडील म्हणाले, "मग, विवेकचं लग्न जमवण्याच्या भानगडीत पडण्यात काही अर्थ नाही." त्या दिवसानंतर वडील मला समजून घ्यायचा प्रयत्न करू लागले आणि पहिल्यांदा ते आणि मी जवळ येऊ लागलो.

मी मोठा होताना वडिलांचे व माझे संबंध वादळी होते. माझी आई सारखं सांगायची, की त्यांचं माझ्यावर खूप प्रेम आहे आणि आम्हा दोघांना एकमेकांशी संवाद साधायला शिकलं पाहिजे. ती आमच्या दोघांमध्ये नेहमी मध्यस्थी करायची. वडिलांचा व माझा संवाद आई वारल्यावर सुरु झाला आणि तेव्हा लक्षात आलं, की खरंच वडिलांचं माझ्यावर खूप प्रेम आहे. त्यांचा प्रवासही अत्यंत कष्टात झालेला आहे. ते उत्तरेतील एका अत्यंत सनातन कुटुंबात वाढले, तरीसुद्धा त्यांनी माझा स्वीकार केला आणि मला माया लावली. मला भीती होती, की माझी लैंगिकता ते स्वीकारणार नाहीत, पण त्यांनी कोणताही तिढा मनात न ठेवता मला पूर्णपणे स्वीकारलं. एकदा त्यांनी मला सांगितलं, "तुझा माझ्यावर विश्वास नाही." मला मात्र वाटत राहिलं, की ते मला स्वीकारणार नाहीत. मी त्यांना अंडरएस्टिमेट केलं. कारण आता हेच माझे वडील मला सांगतात, की एक पुरुष जोडीदार निवड आणि त्याच्याशी लग्न कर. माझे वडील मला सांगतात, की त्यांना मला एका पुरुषाबरोबर संसार करताना बघायचंय. त्यांनी एकदा मला सांगितलं, की आईवडिलांना त्यांचा प्रवास करावा लागतो. ते तो आवडीनेच करतात असं नाही, पण ते करतात, कारण तो प्रवास त्यांच्या मुलांसाठी केलेला असतो. त्यांच्या मुलांच्या प्रेमाखातर केलेला असतो.

माझे आईवडील माझी प्रेरणा आहेत. मला माहीत आहे, की हा स्वीकाराचा प्रवास सोपा नाही, पण अशक्यही नाही.

मी 'गे' आहे हे मी हळूहळू सर्वांना सांगितलं. नाइलाज म्हणून नाही तर माझं त्यांच्यावर प्रेम आहे म्हणून. माझी बहीण, माझे सर्व मित्र आणि आता माझे भाचेमंडळी आणि माझ्या मित्रांची मुलं. हे 'कमिंग आउट' असेच आयुष्यभर चालत राहणार.

जेव्हा २ जुलै २००९ला दिल्ली हायकोर्टाचा निकाल आला (भा.द.सं.३७७चा निकाल) तेव्हा 'टाइम्स ऑफ इंडिया'मध्ये माझी एक मुलाखत छापून आली. ती माझ्या शेजारच्यांनी वाचली व माझ्या भाभीला माझ्या लैंगिकतेबद्दल विचारलं. माझ्या भाभीने हे मला व माझ्या भावाला सांगितलं. तेव्हा माझा भाऊ म्हणाला, "जर कोणी असा प्रश्न विचारला तर त्यांना सांग; की विवेक आमचा भाऊ आहे...आणि हीच आमच्यासाठी सर्वांत महत्त्वाची गोष्ट आहे." याच्यापेक्षा चांगला भाऊ मला या जन्मात मिळणे शक्य नाही.

असा हा माझा व माझ्या जवळच्यांचा प्रवास. मी नशीबवान आहे, की मला आधार देणारे पालक लाभले, आधार देणारे समलिंगी मित्र लाभले. या मित्रांच्या पालकांनी मला स्वीकारलं, आपलंसं केलं. इथे मला अम्माचा आवर्जून उल्लेख करावासा वाटतो. आम्ही प्रेमाने अशोक राव कवी (भारताचे पहिले 'गे' ऑफिटिव्हस्ट) यांना अम्मा म्हणतो. पण इथे अम्मा म्हणजे मी अशोकच्या आईचा उल्लेख करतोय. त्याही आमच्या सर्वांच्या अम्मा.

मी जेव्हा त्यांना पहिल्यांदा भेटलो, तेव्हा त्या गोड हसल्या व मला विचारले, "नया है?" मी म्हणालो, "जी." आम्ही थोडा वेळ बोललो. मग त्या म्हणाल्या, "अशोक के दुसरे फ्रेंड्स से अच्छा है तुम" मला खूप आनंद झाला. त्यांच्या नजरेत मी किती चांगला होतो.

त्यावेळी मला काय माहीत, की त्यांची ही एक कलुप्ती होती- ती म्हणजे समलिंगी समाजांबद्दलची सर्व इत्थंभूत माहिती मिळवणे आणि विशेषत: अशोकच्या खासगी आयुष्याबद्दलची. अधूनमधून त्या मला फोन करत. आमच्या माहितीतल्या समलिंगी जोडप्यांबद्दलची चौकशी

करत. पण हा चौकसखोगपणा आडून आडून व्हायचा. म्हणजे त्या असं विचारणार- “अरे तो अमुक अमुक बन्याच दिवसांत माझ्या घरी आला नाही...सर्व ठीक आहे ना?” आणि मी या जोडप्याच्या आयुष्यात काय घडतेय ते सांगायचो. त्यांना ही माहिती काढून घ्यायची कला इतकी चांगली अवगत होती, की मला खूप काळानंतर उमगले, की मी अम्माचा ‘गे’ समाजातला गुप्तहेर झालोय.

मला आठवते, की २०००च्या सुरुवातीला अशोकचं एका पुरुषाशी नातं होतं. ते अम्मांना नापसंत होतं. त्या फोन करून तासनृतास या नात्याबद्दल बोलायच्या आणि सांगायच्या, की त्यांना ती मांजरासारखे डोळे असलेली व्यक्ती आवडत नाही. (त्यांनी त्या व्यक्तीचं नाव कधीही घेतलं नाही.) त्या मला सांगायच्या, “अशोकला सांग, मांजरासारखे डोळे असलेल्या व्यक्तीवर विश्वास ठेवू नये.” पुढे जेव्हा माझ्या लक्षात आलं, की मी त्यांचा गुप्तहेर झालोय, तेव्हापासून मी शहाणा बनलो आणि आतील माहिती देणं कमी केलं. त्या माझ्यावर खटू झाल्या आणि एक दिवस त्यांनी स्पष्टपणे मला सांगितलं, “तुम भी अशोक के दुसरे फ्रेंड के जैसे हो गये हो।” मी मोठ्याने हसलो. मी एकटाच नव्हतो तर अशोकचे सर्व मित्र कधी ना कधी त्यांच्यासाठी गुप्तहेर झाले होते.

त्यांना अशोकच्या मित्रांशी बोलायला खूप आवडायचं पण त्याचबरोबर त्या कडक स्वभावाच्या होत्या. त्यांनी कधीही कोणाकडूनही वाटेल ते ऐकून घेतलं नाही. त्यांच्या तत्त्वावर त्या ठाम होत्या. त्यांनी ठरवलेली लक्ष्मणरेषा कोणाला ओलांडू दिली नाही. याचं एक उत्तम उदाहरण म्हणजे, एकदा एक मोठा पुढारी त्यांच्या घरी आला व त्यांना सुचवलं, “अशोक गे आहे हे जगासमोर उघडपणे सांगतोय तर तुम्ही त्याला तुमचं आडनाव लावू नकोस म्हणून सांगा.” आईनी त्यांना “तुम्ही इथून जा” म्हणून सांगितले. पण त्याचबरोबर म्हणाल्या, “चहा घेऊन जा.” अम्मा अशा होत्या.

हे माझ्या वाट्याला आलेले चांगले अनुभव, जिथे पालकांनी त्यांच्या समलिंगी मुलांना माया लावली, त्यांना स्वीकारले. पण.....माझ्या प्रवासात अनेकवेळा मला दिसले, की माझे अनेक मित्र आमच्याइतके नशीबवान नव्हते. अनेक मित्रांनी त्यांच्या पालकांना ते 'गे' असल्याचं सांगितल्यावर त्या पालकांच्या प्रतिक्रिया मी पाहिल्या आहेत. त्यांचा स्वीकार, अस्वीकार, काही अंशी स्वीकार अशा विविध स्वीकाराच्या छटा बघितल्या. आपण 'गे' आहोत हे सांगितल्यावरही पालकांनी मुलांवर आणलेला लग्नाचा दबाव पाहिला. 'लग्न झालं, की सर्व ठीक होईल, तू बरा होशील.' हे सुचवलेलं बघितलं. पालकांनी मुलांना शिव्याशाप दिलेले पाहिले. मुलांना केलेली मारहाण पाहिली. मुलांना बहिष्कृत केलेलं पाहिलं. घरातून हाकलून दिलेलं पाहिलं. या सगळ्याचा पालकांना त्रास हातोच, पण मुलांना त्याहून अधिक त्रास होतो. कारण आपल्या पालकांनीच आपल्याला नाकारल्यावर मुलांनी कोणाचा आधार घ्यायचा? या ताणतणावामुळे पालकांचे व मुलांचे शारीरिक, मानसिक आरोग्य ढासळताना पाहिले.

माझी अपेक्षा आहे, की हे पुस्तक पालकांना व त्यांच्या समलिंगी मुलांना एकमेकांना समजून घेण्यास मदत करेल. शेवटी इतकेच म्हणेन- माझं माझ्या पालकांवर नितांत प्रेम आहे व आज मी जो काही आहे तो त्यांच्यामुळे आहे.... आणि म्हणूनच मला वाटते, की प्रत्येक समलिंगी मुलाच्या पालकांनी त्यांच्या मुलाला समजून घ्यायचा प्रयत्न करावा. त्यांनी आपली मुलं जशी आहेत तशी स्वीकारायचं पहिलं पाऊल टाकावं, मग आपली मुलं 'गे' असो, 'लेस्बियन' असो किंवा 'ट्रान्सजेंडर' असोत. हे माझं मनोगत, आपल्या समलिंगी, लेस्बियन, ट्रान्सजेंडर मुलांना/मुलींना समजून घेण्याचा प्रयत्न करणाऱ्या सर्व पालकांना समर्पित करतो.

विवेक राज आनंद (CEO, दहमसफरट्रस्ट, मुंबई)

\*\*\*\*\*

## भाग १ – माहिती

---

डॉ. भूषण शुक्ल (MD, DNB, FRCH Psychiatry)

- डॉ. भूषण शुक्ल हे एक नामवंत मानसोपचारतज्ज्ञ आहेत. लैंगिकतेच्या विषयावर त्यांनी गेली पंधरा वर्ष काम केले आहे. चार वर्ष त्यांनी इंग्लंडमध्ये एन.एच.एस. (नॅशनल हेल्थ सर्विस)मध्ये काम केले. २००८ पासून ते पुण्यात प्रॅक्टिस करत आहेत.
- लैंगिकतेची प्राथमिक जाण याबद्दल थोडं सांगा.

सर्वांनी लक्षात ठेवायची गोष्ट म्हणजे तुमचा लैंगिकतेचा जो भाग आहे, त्याच्याशी कोणाचा काही संबंध नाही. ती निर्माण करण्यात पालकांचा (किंवा इतर कोणाचा) हात नाही. हे खरं आहे, की तुमची लैंगिकता तुमच्यासाठी खूप अडचणीची असू शकते, गैरसोईची असू शकते, पण तरीसुद्धा त्याबद्दल तुम्ही काहीही करू शकत नाही.

प्रत्येकाची लैंगिकता ही चार भागात विभागली जाऊ शकते, हे समजावं म्हणून मी खूप सोपं करून सांगतोय व शास्त्रीयदृष्ट्या ते पूर्ण सत्य आहे, असं मी म्हणत नाही.

(१) मुलाचे/मुलीचे ‘गोनॅड्स’ – शरीरात वृषण आहेत की स्त्रीबिजांडं आहेत व ती कशी काम करतात, याला आपण ‘गोनॅड पातळी’ म्हणूयात.

(२) मुलाची/मुलीची बाह्य जनरेंट्रियं. याला आपण शारीरिक पातळी म्हणूयात.

(३) त्या मुलाचा/मुलीचा लिंगभाव काय आहे? म्हणजे तरुणपणी ते स्वतःला मुलगा की मुलगी समजतात. ही तिसरी पातळी म्हणूयात.

(४) वयात आल्यावर त्या मुलाला/मुलीला कोणत्या लिंगाच्या व्यक्तीबद्दल लैंगिक आकर्षण वाटतं? (स्त्री? पुरुष? का दोन्ही लिंगाच्या व्यक्तीबद्दल लैंगिक आकर्षण वाटतं?) ही चौथी पातळी.

या चारही पातळ्यांचा एकमेकांशी काहीही संबंध नाही. ८०% लोकांमध्ये या सर्व पातळ्यांमध्ये एकसंधपणा (काँगूअन्स) असतो. म्हणजे त्या मुलाची/मुलीची गुणसूत्रं, जनरेंट्रिय, लिंगभाव व लैंगिक कल यांच्यात एकसंधपणा असतो. या एकसंधपणाला पुरुष किंवा स्त्री हे सर्वसाधारणपणे नाव दिले गेले आहे. पण या सगळ्यांमध्ये इतक्या छटा आहेत, की हे सर्व बन्याचदा सामान्य माणसाच्या तर सोडाच पण अनेक डॉक्टरांच्या समजण्यापलीकडचे आहे. थोडक्यात सांगायचं तर यातलं आपल्याला फार कळतं असा आव खरंच कोणी आणू नये.

- औषधोपचार, समुपदेशन, धाक, शिक्षा या मार्गांनी ही लैंगिकता बदलता येते का?

मुलांचा/मुलींचा लैंगिक कल, लिंगभाव बदलता येत नाही. असे बदल करायच्या प्रयत्नांनी त्या मुलाची/मुलीची अस्मिता (जी अगोदरच रसातळाला गेलेली असते) अजूनच दुखावते. यातून काहीही साध्य होत नाही.

काहीजणांमध्ये असा समज आहे, की कालांतराने लैंगिक कल बदलू शकतो किंवा आपोआप बदलतो. एक लक्षात ठेवा, की जसजसं वय वाढतं तसतशा लैंगिक आवडी बदलतात, लैंगिक सुखाच्या संकल्पना बदलतात. लैंगिकता खूप बदलणारी (डायर्नॉमिक/फ्लुइड) गोष्ट आहे. दहा वर्षांपूर्वी तुमची जी लैंगिकता होती तीच आज आहे असा कोणताही माणूस नाही. तसं कोणी असेल तर तो अत्यंत दयनीय स्थितीत जगत आहे (ही इज लिहिंग अ व्हेरी पथेटिक लाइफ) इथे लक्षात घ्या, की 'फ्लुइड' आहे याचा अर्थ प्रत्येक गोष्ट बदलता येते असा नाही. 'फ्लुइड' म्हणजे ती नदीसारखी 'फ्लुइड' आहे म्हणजे

त्यातील पाणी बदलते, त्यातील मासे बदलतात, पाणी कमी-जास्त होते, वेग कमी-जास्त होऊ शकतो, पण याचा अर्थ तिचा इकडचा काठ तिकडे आणि तिकडचा काठ इकडे होत नाही आणि ती क्षणात इथून उटून ५ किमी. दूर जात नाही. नदीचा समुद्र होत नाही.

- आमच्यामुळे असे मूल झाले का?

अनेक पालकांना असे वाटते, की आमच्यामुळे असे मूल झाले का? तर याचे उत्तर स्पष्टपणे ‘नाही’ असे आहे. आईवडिलांनी मुलामुलींना कसे वाढवले याचा त्यांच्या मुलामुलींच्या लैंगिकतेशी काहीही संबंध नाही.

मला अनेक पालक विचारतात, की आम्ही या मुलामुलींची लैंगिकता बदलण्यासाठी काय करू शकतो? याचेही उत्तर ‘काहीही नाही’ असे आहे. म्हणजे आईवडिलांना वाटते, की त्यांच्या मुलामुलींच्या घडणीवर त्यांचा खूप मोठा प्रभाव असतो. असे त्यांना वाटत असले तरी हा प्रभाव लैंगिकतेच्या बाबतीत (वरील दिलेल्या पैलूंमध्ये) काहीही नसतो.

याच्यापुढे जाऊन मी असे म्हणेन, की अल्पसंख्याक म्हणून मानल्या गेलेल्या ज्या लैंगिकता आहेत त्या खूप ‘बायोलॉजिकली ड्रिव्हन’ आहेत आणि त्यांचा बाहेरच्या जगाशी फारसा काही संबंध नाही, हे वारंवार शास्त्रीयदृष्ट्या सिद्ध झालेले आहे. ही गोष्ट आईवडिलांनी लक्षात घेणे आवश्यक आहे. त्यांना आपल्या मुलामुलींच्या लैंगिकतेचे वाईट वाटणे, त्याचे दुःख होणे, हे मूल चारचौघांसारखे नाही, याचा त्रास होणे साहजिक आहे, स्वाभाविक आहे आणि त्याच्याबद्दल माझी पूर्ण सहानुभूती आहे. पण हे माझ्यामुळे झाले आणि काहीतरी करून याच्यात आपण बदल घडवून आणू शकतो ही गोष्ट खरी नाही.

- पालकांची इच्छा – नातू/नात हवी.

अनेक पालक म्हणतात, की आम्ही हे स्वीकारू, पण कर्तव्य म्हणून तरी त्याने/तिने लग्न केले पाहिजे, मुलंबाळं झाली पाहिजेत. बहुतेक पालकांच्या मुलांकडून अशा अपेक्षा असतात.

मला वाटते, की कर्तव्य ही जी गोष्ट आहे तीसुद्धा फार ‘फ्लुइड’ आहे. बन्याचदा आईवडील म्हणतात, की आम्ही अशी अपेक्षा बाळगणे चूक आहे का? तर याचं जर सरळ, स्पष्ट उत्तर हवं असेल तर ‘हो’, कारण पोराची प्रत्येक अपेक्षा तुम्हीतरी पूर्ण करू शकता का? आणि जर अपेक्षा करणे आणि त्या व्यक्तीने ती पाळणे हा जर नातेसंबंधांचा पाया असेल तर मग कोणतंच नातं टिकणार नाही. देवावर विश्वास ठेवणारेसुद्धा देवाकडून किती अपेक्षा ठेवतात, पण त्या पूर्ण नाही झाल्या तर त्याच्याशी नातं तोडतात का? म्हणतात का देवाला, की तू माझी इच्छा पूर्ण कर. तुम्ही लालूच दाखवता पण त्याचा उपयोग होतो का? म्हणजे अपेक्षेच्या रास्तपणाची व्याख्यासुद्धा जर बहुसंख्येने (मेजॉरिटी) ठरवली जाणार असेल तर अवघड आहे आणि या धडपडीत आपल्या मुलाला/मुलीला सुखी करायच्या चुकीच्या कल्पनेने पालक अजून चार जीव दुःखी करतात. तुमचे मूल, त्याचा/तिचा होणारा समाजमान्य जोडीदार, त्या जोडीदाराची झालेली फसवणूक.... आपण आपल्या भिन्नलिंगी लैंगिक कल असणाऱ्या मुलाचं/मुलीचं लग्न एका समलिंगी लैंगिक आकर्षण असणाऱ्या विरुद्ध लिंगाच्या व्यक्तीशी लावू का? का आपल्या समलिंगी मुलासाठी/मुलीसाठी एक नियम आणि इतरांसाठी वेगळा असा दुटप्पीपणा आपण करणार आहोत? त्यांना जर मुलं झाली तर मुलंही यात भरडली जातात.....असा तुम्ही दुःखाचा आयाम वाढवून जास्त लोकांना त्या दुःखाच्या परिघात आणता.

- या सनातनी समाजात पालकांच्या काय मर्यादा आहेत?

मानसोपचारतज्ज म्हणून प्रॅक्टिस करताना मला नेहमी जाणवतं, की

अनेक पालक त्यांच्या प्रकारे (विशेषतः आई) मुलाला/मुलीला समजून घ्यायचा प्रयत्न करतात, सांभाळून घेण्याचा प्रयत्न करतात. पण अशा वेळी असे दिसते, की काही मुलांची पालकांकडून अवास्तव अपेक्षा असते. आईवडिलांना ही सर्व गोष्ट समजणे खूप अवघड जाते, कारण ते या मुलांच्या/मुलींच्या तीन पिढ्या मागे आहेत. एक पिढी ७-१० वर्षांची मानली तर ही मुले तीन पिढ्या पुढे असतात. या मुलांपेक्षा तीन पिढ्या मागे असणाऱ्या पिढीला ही लैंगिकतेची संकल्पना पूर्णपणे समजावी ही अपेक्षा रास्त नाही. प्रगल्भता आली, की तुम्हाला हे लक्षात येईल, की कोणीही दुसऱ्याला पूर्णपणे समजू शकत नाही. आईवडिलांनी आपल्याला स्वीकारावे ही एक गोष्ट, पण आपल्याला पूर्णपणे समजून घ्यावे हा अदृहास आततायी आहे.

दुसरी गोष्ट उपस्थित होते ती म्हणजे काही मुलं म्हणतात, जर पालकांनी आम्हाला स्वीकारलं तर आता आम्ही जसं हवं तसं वागूव या सगळ्याला तुम्ही नुसता होकारच नाही दिला पाहिजे, तर तुम्ही त्याला 'सपोर्ट' केला पाहिजे. जर पालक ते करू शकले तर उत्तमच, पण हे अनेक पालकांना अवघड जाते. विशेषतः ज्या मुलाला/मुलीला विरुद्ध लिंगाच्या व्यक्तीचे कपडे घालणे, हावभाव करणे हा त्यांच्या लैंगिकतेचा महत्त्वाचा भाग आहे. अशांनी, आईवडिलांनी हे सर्व स्वीकारले पाहिजे ही अपेक्षा खूप अवास्तव आहे. त्या आईवडिलांवर हा खरंतर अन्याय आहे. त्यांनी अत्यंत कष्टाने तुम्हाला समजून स्वीकारायचा प्रयत्न केला आहे. ही खूप मोठी बाब आहे. ते जर तुम्हाला समजून घ्यायचा प्रयत्न करताहेत तर तुम्हीही त्याची जाण ठेवली पाहिजे. जर आपल्याला वाटत असेल, की आपले पालक आपल्याला स्वीकारत नाहीत, तर आपण स्वतंत्र राहून आपली जीवनशैली जस्तर जगावी, पण प्रौढ झाल्यावरही घरच्यांकडे राहायचे, त्यांच्या पैशावर आपली जीवनशैली जगायची आणि त्यांनी अजून पूर्णपणे आपल्याला का स्वीकारले नाही म्हणून जाब विचारायचा, हे मला पटत नाही. तुम्ही

शिका, स्वतःच्या पायावर उभे राहा, स्वतंत्र राहा आणि तुमची जीवनशैली जगा. जर ते मूल स्वतंत्र राहायची तयारी दाखवत असेल तर आईवडिलांनीही त्याला/तिला अजिबात अडवू नये. काही झाले तरी चालेल पण त्यानी माझ्यापाशीच राहिले पाहिजे हा अदृहास पालकांनी धरू नये. काही वेळेला पालकांना आणि मुलांना असं वाटतं ‘धरलं तर चावतंय, सोडलं तर पळतंय’, पण अशा वेळी पालकांनी आणि मुलांनी कठोर भूमिका घेणं गरजेचं आहे.

• पालकांसाठी, समाजमान्यतेसाठी ‘गे/लेस्बियन’ मुलांनी/मुलींनी आपली लैंगिकता दाबून ठेवून भिन्नलिंगी जीवनशैली जगावी का ?

अशा मुलांनी/मुलींनी समाजमान्य लैंगिकतेचा मुखवटा चढवून त्याप्रमाणे वागायचा त्यांनी प्रयत्न करावा का? की तसे वागायचे नाटक करावे? हा प्रश्न मला अनेकवेळा केला जातो. ज्या दिशेने हा समाज चालला आहे, ज्या स्वातंत्र्याच्या संकल्पनेवर आपले ‘सिविलायझेशन’ आधारित आहे, त्याच्यामध्ये हे बसत नाही. एखाद्या व्यक्तीने जन्मभर आपल्या लैंगिकतेवर तुळशीपत्र ठेवून समाजामध्ये स्वीकार होण्यासाठी, समाजात बसण्यासाठी एका वेगळ्या प्रकारे वागत राहायचे अशी परिस्थिती संपत आली आहे. हे म्हणजे आपल्या प्रत्येक पोराने डॉक्टर किंवा इंजिनिअर झाले पाहिजे असा हट्ट धरण्यासारखी गोष्ट आहे. जिथे जातिभेद नष्ट होऊ लागले आहेत, स्त्रियांना स्वातंत्र्य मिळू लागले आहे, तिथे फक्त लैंगिकतेच्याबाबतीत असा सनातनी दृष्टिकोन कसा चालेल? हा वेडेपणा आहे. याने तुम्ही फक्त त्या मुलांच्या/मुलींच्या मनावर अजून आघात करत आहात. या लैंगिकतेची वारंवार चर्चा करणे, ती बदलायचा प्रयत्न करणे किंवा ती विशिष्ट साच्यात बसवायचा प्रयत्न करणे यामुळे लैंगिकता हा त्या मुलाच्या/मुलीच्या आयुष्यातला केंद्रबिंदू होतो, जी माझ्या दृष्टीने सर्वांत मोठी शोकांतिका आहे. अॅट नो पॉइंट इन टाइम युअर एन्टायर बीइंग इज रिप्रेझेटेड बाय युअर सेक्शनॅलिटी.

लैंगिक अल्पसंख्याक व्यक्तींना हा नेहमी त्रासदायक मुद्दा होतो कारण लैंगिकतेपलीकडे काही आयुष्यच राहात नाही. म्हणजे त्यांची स्वतःबद्दलची संकल्पना, त्यांची जगाबद्दलची कल्पना, आर्थिक, सामाजिक, राजकीय कारकिर्दीची कल्पना हे सगळं फक्त त्यांच्या लैंगिकतेशी जुळून बसतं व याच्यापलीकडे त्यांना आयुष्यच शिल्लक राहात नाही. आईवडील तो मुद्दा सोडत नाहीत, समाजही तो मुद्दा सोडत नाही आणि म्हणून तेही तो मुद्दा सोडूच शकत नाहीत. त्यांना पूर्ण माणूस बनायची संधी मिळतच नाही. आपण कोणत्या लैंगिक चौकटीत बसायचं या धडपडीत माणूस होणं राहूनच जातं. पण पालकांना हे टाळता येणं शक्य आहे. हे सोपं नक्कीच नाही, याची मला कल्पना आहे. बोलायला ही खूप सोपी गोष्ट आहे, पण हे जर पालकांनी स्वतःच्या मुलामुलींसाठी नाही केलं तर मग कोण करणार ?

\*\*\*\*\*

## कायदा

पूर्वी खिस्ती धर्माची ब्रिटिश कायद्यावर मोठी छाप होती. या धर्मात समलिंगी संभोग पाप असल्यामुळे ब्रिटिश कायद्यात हा गुन्हा बनला. भारतात ब्रिटिशांचे राज्य आल्यावर भारतीय दंडविधान संहितेत समलिंगी संबंध गुन्हा ठरला (भा.दं.सं.३७७). या कायद्यानुसार दोन प्रौढ पुरुषांनी राजीखुशीनं व खासगीत केलेला संभोग गुन्हा ठरला. या कायद्यामध्ये जोडीदारांचे वय काय आहे, तो संभोग दोघांच्या संमतीने होतोय का? याचा कसलाच विचार झाला नाही. सरसकट सगळ्यांनाच गुन्हेगार ठरवले.

समलिंगी लोकांबद्दलची समाजाची वक्रदृष्टी, समलिंगी लोकांचे आर्थिक शोषण करण्यास ३७७ कलमाचा होणारा वापर, या कायद्यामुळे एचआयव्ही हस्तक्षेप प्रकल्पांना होणारा अडथळा या सर्वांमुळे 'नाझ फाउंडेशन इंडिया' व 'लॉयर्स कलेक्टिव्ह' या संस्थांनी ३७७ कलमात बदल व्हावा, प्रौढ व संमतीने संभोग करणाऱ्यांना हे कलम लागू होऊ नये म्हणून २००१मध्ये दिल्ली हायकोर्टात एक जनहित याचिका दाखल केली.

ही केस ८ वर्ष चालली. २ जुलै २००९ला चीफ जस्टिस अ. प्र. शहा व जस्टिस एस. मुरलीधर यांनी ऐतिहासिक निकाल दिला, की ३७७ कलम हे समलिंगी लोकांच्या मूलभूत अधिकारांचे उल्लंघन करणारे आहे. पंडित जवाहरलाल नेहरूंनी सर्व भारतीय नागरिकांना समान हक्क मिळतील असे स्वप्न पाहिले होते. काही व्यक्तींना समलैंगिकता मान्य नाही म्हणून समलिंगी व्यक्तींना त्यांच्या अधिकारांपासून वंचित ठेवणे हा त्यांच्यावर मोठा अन्याय आहे. (प्रौढ नसलेल्या व्यक्तीबरोबर संभोग करणं मग त्या व्यक्तीची संमती असली तरी या कायद्यांतर्गत गुन्हाच आहे.) प्रौढांनी संमतीने केलेल्या समलिंगी संभोगाला गुन्हा मानला जाऊ नये या दिल्ली हायकोर्टाच्या निकालाविरुद्ध काही गट सुप्रीम कोर्टात गेले आहेत. तिथे ही केस चालू आहे.

श्री. भानुप्रताप बर्गे, वरिष्ठ पोलिस निरीक्षक  
सामाजिक सुरक्षा विभागप्रमुख, पुणे कमिशनर ऑफिस.

- वरिष्ठ पोलिस निरीक्षक श्री. भानुप्रताप बर्गे हे गेली २० वर्ष पोलिसदलात आहेत. त्यांनी मुंबईत असताना आतंकवादी व अमली पदार्थाची तस्करी करणाऱ्यांविरुद्ध अनेक यशस्वी मोहिमा राबवल्या आहेत. त्यांच्या उत्कृष्ट कामगिरीसाठी त्यांना अनेक मानसन्मान प्राप्त झाले आहेत. ते सध्या पुणे कमिशनर ऑफिसच्या सामाजिक सुरक्षा विभागाचे प्रमुख आहेत.
- सर, ‘गे’, ‘लेस्बियन्स’, ‘ट्रान्सजेंडर्स’ बदलच्या कोणत्या प्रकारच्या केसेस सामाजिक सुरक्षा विभाग हाताळते ?

ज्या केसेस नाजूक असतात, की घरच्यांना तो पुरुष ‘गे’ आहे हे माहीत नाही आणि त्याला ब्लॅकमेल केलं जातंय अशा केसेस असतील तर अशा पुरुष/स्त्रियांनी समाजिक सुरक्षा विभागाकडे जरूर मदत मागावी. आम्ही त्यांना योग्य प्रकारे मार्गदर्शन करू आणि संवेदनशीलपणे ही केस हाताळायचा प्रयत्न करू.

पण हे महत्त्वाचे आहे, की ती व्यक्ती प्रौढ असली पाहिजे. जर ती व्यक्ती ‘मायनर’ असेल (१८ वर्ष पूर्ण झालेली नसेल) तर मात्र कोणतीही ‘रिस्क’ घेतली जात नाही. आम्ही त्यांना इथं बोलवू शकत नाही. आम्ही त्यांना CWC- ‘चाइल्ड वेल्फेअर कमिटी’ला रेफर करतो आणि तिथे योग्य ते निर्णय घेतले जातात.

जर कोणा लहान मुलाला कोणी प्रौढ व्यक्ती त्रास देत असेल, ब्लॅकमेल करत असेल, जबरदस्ती करत असेल तर ‘IPC’च्या कलमांप्रमाणे आम्ही त्या प्रौढ व्यक्तीवर कारवाई करू शकतो.

‘गे’, ‘ट्रान्सजेंडर’ संदर्भातल्या तक्रारी पोलिस स्टेशनवर फार येत नाहीत. आल्यावर काही वेळा पोलिसांना माहीत नसते, की अशा विषयावर काय कायदेशीर कारवाई करायची, काय मार्गदर्शन करायचे? अशा वेळी सामाजिक सुरक्षा विभाग अशा विविध विषयांवर काम करत असल्यामुळे आम्ही पूर्वीच्या अनुभवातून सांगू शकतो, की काय करायचे आणि काय करायचे नाही. आमच्या कॉन्टॅक्टमध्ये अनेक एनजीओज असतात. जेव्हा आम्हाला यातला काही भाग कळत नाही तेव्हा आम्ही तुमच्यासारख्या एनजीओजची मदत घेतो. उदा., कोर्टाची ‘लेटेस्ट जजमेंट्स’, ‘गव्हर्नर्मेंट स्टॅंड’ इत्यादी.

- आता ३७७ कलमावरच्या केसेस दाखल होऊ शकतात का ?

३७७च्याबाबतीत जर दोन प्रौढ पुरुषांमध्ये किंवा दोन प्रौढ स्त्रियांमध्ये संमतीने खासगीत लैंगिक संबंध होत असतील तर अशा तक्रारी आमच्याकडे येणार नाहीत. पण जर संमती नसताना लैंगिक संबंध झाले किंवा ‘मायनर’ व्यक्तीबरोबर एका प्रौढ व्यक्तीने लैंगिक संबंध केले (जरी त्या मायनरची संमती असली तरी) तर आम्ही ३७७ खाली तक्रार घेणार आणि ‘इन्हेस्टिगेट’ करणार.

- समलिंगी व्यक्तीने कोणती काळजी घ्यायला पाहिजे ?

समलिंगी व्यक्तीने काळजी घेतली पाहिजे, की लैंगिक संबंध हे प्रौढांमध्ये, संमतीने आणि खासगीत झाले पाहिजेत. जर संबंध कायद्याच्या चौकटीत नसतील तर मग ती व्यक्ती ‘गे’ आहे का ‘स्ट्रॅट’ आहे हे आम्ही बघणार नाही. कायदेशीर कारवाई करणार. आणखी एक गोष्ट, यातून जातीचा, धर्माचा पेच निर्माण होता कामा नये. जात, धर्मांमध्ये ताणतणाव, गैरसमज निर्माण होईल हा उद्देश असता कामा नये- ‘कम्युनल हार्मनी हॅज टु बी मेन्टेन्ड.’

- सामाजिक सुरक्षा विभागाबरोबर एनजीओजना कशा प्रकारे काम करता येईल ?

तुमच्यासारख्या एनजीओजची मोठी जबाबदारी आहे, की जनजागृती करून लोकांना सामाजिक सुरक्षा विभागाबद्दल माहिती द्यावी आणि या विभागाचा आधार कसा घ्यायचा याबद्दल शिक्षण द्यावं.

जर तुम्ही या विषयाबद्दल कॉन्फरन्स, सेमिनार भरवले, चर्चासत्र आयोजित केली तर पोलिसांची भूमिका समजावून देण्यासाठी आम्ही नक्की येऊ. हा काही महारोग नाही, की त्यापासून सऱ्यांनी दूर पळायला पाहिजे. पोलिसांत आमच्यासारखे जे संवेदनशील आहेत, ते ही गोष्ट लोकांना सांगू शकतात, म्हणजे समाजास कळेल, की काही पोलिस उदारमतवादी आहेत, फक्त एनजीओजच असा स्टॅंडघेत नाहीत, तर काही पोलिस अधिकारीही अशी उदारमतवादी दृष्टी बाळगतात.

\*\*\*\*\*

मनाचिये गुंती

२८

## भाग २ – आत्मकथा

### १. श्रीमती शकुंतला खिरे (बिंदुमाधवची आई)

खरंच, प्रत्येकाचं आयुष्य म्हणजे एक काढंबरीच असते व प्रत्येकजण सुख मागत असतानाच वेगवेगळ्या प्रकारे दुःख त्याच्यासमोर उभे राहाते. मलातरी कुठे माहीत होते, की माझ्या शांत, संथ, एकसुरी जीवनात एखादे वादळ येणार आहे म्हणून!

माझा जन्म एका मध्यमवर्गीय कुटुंबात पुण्यात झाला. एकत्र कुटुंब असल्यामुळे तसे माझे किंवा माझ्या भावंडांचे फारसे लाड झाले नाहीत. पूर्वीच्या काळी मुलांचे लाड होतच नसत म्हणा. माझे आजोबा, माझे वडील, आई, आम्ही तीन भावंडे (त्यावेळी चौथ्या भावंडाचा जन्म झाला नव्हता), काका, काकू, त्यांची तीन मुले व एक ब्रह्मचारी काका असे बारा लोकांचे आमचे कुटुंब होते. त्यामुळे जरी आजोबा पोस्टमास्तर होते व माझे वडील व काका मिलिटरी अकाउंट्समध्ये काम करीत होते, तरी एकंदर परिस्थिती आर्थिकदृष्ट्या फारशी सुखावह नव्हती. त्यामुळे माझा भाऊ जरी एका मान्यवर शाळेत शिकला, तरी आम्ही बहिणी, चुलत बहिणी घराजवळील म्युनिसिपालिटीच्या शाळेतच चौथीपर्यंत शिकलो.

चौथी पास झाल्यानंतर मात्र आम्ही एका माध्यमिक शाळेतून ११वी (त्या काळची मॅट्रिक) परीक्षा पास झालो. त्या काळात मुर्लींना फारसे शिकवत नसत; परंतु आजोबा व वडील पुरोगामी विचारांचे होते. त्यातच शिक्षणाला आईचाही पाठिंबा होता. ती अकरा महिन्यांची असतानाच तिची आई म्हणजे माझी आजी गेली. तिचे लहानपण खेडेगावात, तिच्या आजीजवळ गेले. तिथे ती जेमतेम मराठी तिसरीपर्यंत शिकली व लगेच

आजोबांनी तिला पुण्याला आणून तिचे तेराव्या वर्षीच लग्न लावून दिले. त्यामुळे आपण शिकलो नाहीतरी निदान आपल्या मुलीतरी शिकाव्यात या इच्छेने आमच्यावर कोणतेही घरकाम न लादता आमच्या मनाप्रमाणे आम्हाला शिक्षण घेऊ दिले. त्यामुळे मी सायन्स व माझी बहीण आर्ट्स ग्रॅज्युएट झालो. नंतर यथावकाश आम्हा दोघींची लग्न आईवडिलांनी पसंत केलेल्या मुलांशी झाली.

मी लग्नाआधी व नंतरही नोकरी करत होते. लग्नाला चार वर्ष होईपर्यंत मला मूलबाळ नव्हते. सासरची मंडळी पैशाची फार लोभी. त्यांच्या हे पथ्यावर पडले. पण नंतर दिवस गेल्यानंतर मात्र मी नोकरी सोडली. त्यांची आवक कमी झाल्यामुळे बारीकसारीक गोष्टींवरून त्यांची माझ्याशी भांडणे होऊ लागली व माझ्या मोठ्या मुलाचा जन्म झाल्यावर आम्ही विभक्त झालो. उशिरा व अवघड बाळंतपण झाल्यामुळे मला भरपूर अशक्तपणा आला होता. यावेळी माझ्या आईने व वडिलांनी मला भक्कम आधार दिला. वेगळे राहाताना आमच्याजवळ काहीही नव्हते. हळूहळू घरगुती सामान आणून आम्ही आमच्या नव्या संसाराला सुरुवात केली. याकाळात मला पुन्हा दिवस गेले. त्यातच 'वडील एकाएकी गेल्यामुळे त्यांचा आधारही नाहीसा झाला.

धाकटी मुलगी झाल्यावर आर्थिक स्थिती सुधारण्यासाठी मी पुन्हा नोकरी करण्याचे ठरवले. पण वयाच्या पस्तिशीत मला कोणती नोकरी मिळणार? म्हणून मी प्रथम सरकारी स्कॉलरशिप घेऊन बी.एड. केले व ज्या शाळेत मी शिकले त्याच शाळेत शिक्षिका म्हणून नोकरीस लागले. शिक्षिकेचीच नोकरी करण्यास मला दोन कारणे दिसली. एक म्हणजे घरातल्या खर्चास माझा थोडा हातभार लागेल व मुले मे महिन्यात, दिवाळीत घरी असतील तेव्हा मलाही त्यांच्यासोबत घरी राहावयास मिळेल. या वेळी माझी नोकरी, घर, मुले व जवळचे नातेवाईक यांच्यातच माझे जग सीमित होते. मुले सुसंस्कारित करण्याच्या व त्यांचे

शिक्षण मार्गी लावण्याच्या प्रयत्नात मला इतर कोणत्याही गोष्टीत स्वारस्य उरले नव्हते.

माझा मुलगा लहानपणी गोरा व गुटगुटीत होता. सर्व लोक त्याला उचलून घेत. पण तो भयंकर रागीटही होता. त्याउलट मुलगी अगदी शांत होती. देवदेवतांचे सर्व सणवार करणाऱ्या घरात जन्मल्यामुळे दोन्ही मुले देवभोळी होती. मोठा मुलगा दर शनिवारी घराजवळच्या मारुतीला तेल घालून उद्बत्ती लावत असे. काही काळ तो साईबाबांचाही भक्त होता. पण जसजसा तो मोठा झाला, तसतशी त्याची देवावरील श्रद्धा कमी झाली व इतकी, की तो जवळजवळ नास्तिक बनला. परवापरवापर्यंत तर तो देवळात जातसुद्धा नव्हता. त्याच्या नास्तिकपणामुळे मीही घरातील देवदेव (उदा., सत्यनारायण) कमी केला.

दोघेही अभ्यासात चांगली होती. मुलगा बारावीनंतर मेडिकलला जाणार असे म्हणत होता पण इंटरमध्ये त्याला मेडिकलला जाण्याएवढे मार्कस मिळाले नाहीत, त्यामुळे त्याला कम्प्युटर इंजिनिअरिंगला घातले व तेसुद्धा प्रायव्हेट कॉलेजमध्ये. त्यामुळे त्याच्या शिक्षणात भरपूर पैसे खर्च झालेले, म्हणून मॅट्रिक झाल्यावर मुलीला इंटरला न पाठवता आम्ही तिला डिप्लोमाला घातले.

मुलगा यथावकाश बी.ई.(कम्प्युटर) व मुलगी डिप्लोमा झाली. काही किरकोळ नोकच्या केल्यानंतर ती टेलिफोन कंपनीत लागली. नुलाला मात्र नोकरीसाठी चेन्नईला जावे लागले. तो प्रथमच आमच्यापासून दूर जाणार व एकटा राहाणार याची मला फार काळजी वाटली; पण काही दिवसांनंतर तो एकटा राहू शकतो हे लक्षात आले.

अंदाजे सव्वा वर्षानंतर मुलाने ती नोकरी सोडण्याचे सूतोवाच केले होते. त्याप्रमाणे तो नोकरी सोडून पुण्याला परत आला. पुण्याला त्याला नोकरी मिळाली, पण त्याचे बहुतेक सर्व मित्र अमेरिकेस गेल्यामुळे त्यानेही अमेरिकेत जाण्यासाठी इंटरव्हू द्यायला सुरुवात केली. त्या

वेळी आमच्याकडे फोनही नव्हता. अमेरिका व भारत यातील वेळेत १०-१२ तासांचे अंतर असल्यामुळे त्याचे इंटरव्हू रात्री ११ ते १२च्या दरम्यान व्हायचे. त्यासाठी तो त्याच्या मित्रांच्या ऑफिसची किल्ली घेऊन तेथून इंटरव्हू देत असे. त्यात यश येऊन तो 'यू.एस.'ला निघाला. त्या वेळी त्याचे वडील कामानिमित्त हैदराबादला गेल्यामुळे मला त्याच्या जाण्याचे टेन्शनच आले होते. जेव्हा त्याच्या मित्राने घरी येऊन तो सुखरूप पोहोचल्याचा फोन आल्याचे सांगितले तेव्हाच माझ्या जिवात जीव आला.

आता माझे आयुष्य सुखाने सुरु झाले होते. मुलगी नोकरी करत होती, मुलगा 'यू.एस.'मध्ये होता. कालांतराने आम्ही फोन घेतला. त्याचे नियमित फोन येत होते. या वेळी आम्ही मुलीसाठी वरसंशोधन सुरु केले, पण तिला एकही मुलगा पसंत पडेना. या गोष्टीचा आम्हाला फार त्रास झाला. पण त्या वेळी मुलगा सुट्टी घेऊन आल्यामुळे हे दुःख आम्ही तात्पुरते तरी विसरलो. पुन्हा अमेरिकेला गेल्यावर, आपले लग्न आपणच ठरवले असे त्याने फोनवर सांगितले. मुलगी पुण्यातली होती. आम्ही फारसे आनंदी नव्हतो. कारण त्याच्या लग्नाविषयी आमच्या वेगळ्या अपेक्षा होत्या. पण त्याचे लग्न झाल्यावर निदान मुलाचे आयुष्य तरी मार्गी लागेल, या विचाराने आम्ही या लग्नाला परवानगी दिली.

याच वेळी मला ब्रेस्ट कॅन्सर असल्याचे लक्षात आले. मी लागलीच ऑपरेशन करून घेतले व मुलाला त्रास होऊ नये म्हणून त्याला काहीच कळवले नाही. फोनवर नेहमीप्रमाणे मी बोलले नाही म्हणून तो बेचैन झाला व त्याच्या मित्राला त्यानी फोन केला व घरी जाऊन चौकशी करण्यास सांगितले व अशा तच्छेने त्याला माझ्या दुखण्याची माहिती मिळाली. कॅन्सर झालेला माणूस फार काळ जगत नाही अशी माझी तेव्हा समजूत होती. त्यात माझ्या दोन्ही मुलांची लग्ने न झाल्यामुळे, माझे कर्तव्य मी पार पाढू शकले नाही अशा समजुतीने मला फार नैराश्य आले.

त्यामुळे निदान मुलाचे लग्नतरी आपल्या देखत होते आहे, या कल्पनेने मी उभारी घेऊन केमोथेरेपी चालू असताना मुलाच्या लग्नाची आमंत्रणे केली व मुलीकरता स्थळे शोधण्याचे काम जोरात सुरू केले.

पण मन योजते एक व होते भलतेच. मुलाच्या लग्नानंतर लगेचच घटस्फोट झाला. हा आमच्यावर मोठा धक्का होता. या गोष्टीमुळे आजूबाजूच्या लोकांची आमच्याकडे बघण्याची दृष्टी बदलली. मुलीच्या लग्नात अडथळा येण्याची शक्यता निर्माण झाली. या सगळ्यामुळे माझ्या मिस्टरांना फार मोठा धक्का बसला. रजा घेऊन, जवळजवळ महिनाभर ते ऑफिसमध्येही गेले नाहीत. पण माणसाची आशा मोठी चिवट असते म्हणतात. म्हणून पुन्हा अमेरिकेला गेलेल्या मुलाला मी लग्न करण्याचा आग्रह केला. त्याला एकटे वाटू नये म्हणून मी तीन महिने अमेरिकेला गेले. पण तिथे किती दिवस राहाणार? परत आल्यावर काही नातेवाइकांनी सुचवलेल्या मुलींबद्दल मी मुलाजवळ फोनवर बोलले. पण आपण पुन्हा लग्न करणार नाही व तसा आग्रह केल्यास पुन्हा भारतात परत येणार नाही, असे मुलाने निकून सांगितले.

वास्तविक आमच्या घरात हा पहिलाच घटस्फोट असल्यामुळे आम्ही हवालदिल झालो होतो. पण निदान मुलाने अमेरिकेत कायम वास्तव्य करू नये, आमच्याजवळ राहावे म्हणून, आम्ही त्याला लग्नाचा आग्रह करणार नाही पण परत भारतात ये, असे सांगितले. त्याप्रमाणे तो कायमचा भारतात आला व अमेरिकेतील त्याच्या ऑफिसच्या मुंबईतील शाखेत रुजू झाला.

आता आपले सुरळीत चालेल असे वाटत असतानाच मुलाने आपण समलिंगी आहोत ही धक्कादायक बातमी प्रथम बहिणीला व नंतर आम्हा दोघांना सांगितली. आम्ही हादरूनच गेलो. सर्वप्रथम आमच्यासारख्या पापभिरू व देवावर पूर्ण श्रद्धा असलेल्या माणसांवर असा प्रसंग कसा आला, आमचे काही चुकले का असा विचार माझ्या

मनात आला. याचे वडील म्हणाले, “हा मुलगा गेल्या जन्मीचं पाप आहे, जे वाट्याला आलं आहे.” पुढे म्हणाले, “माझ्या आईवडिलांनी देवाधर्माचं काही केलं नाही म्हणून हे वाट्याला आलं आहे.” पुढे कधी त्यांनी हा विषय काढला नाही.

या विषयावर मी कुणाशीही म्हणजे माझ्या जवळच्या नातेवाइकांशीही बोलू शकत नव्हते. नातेवाईक, आजूबाजूचे लोक त्यांना कळले तर काय होईल? मुलीचे लग्न कसे होईल? अशा विचारांनी मी भंडावून गेले. निदान तिचे लग्न होईपर्यंत तरी तू ही गोष्ट बाहेर सांगू नकोस असे मुलाला निक्षून सांगितले व त्यानेही ते ऐकले.

देवदयेने मुलीचे लग्न जमले व झालेही. आता राहिला मुलाचा प्रश्न. मुलगा जरी आपण समलैंगिक आहोत असे सांगत असला तरी त्याच्यावर विश्वास ठेवावयास मन तयार नव्हते. त्याचा काहीतरी गैरसमज झाला असेल, अमेरिकेत राहिल्यामुळे हे खूळ त्याच्या मनात आले असेल असे मानून मी त्याचे मन वळवण्याचा प्रयत्न केला. त्याला एका बाबाकडेही घेऊन गेले; परंतु त्याचा काहीच उपयोग झाला नाही. शेवटचा प्रयत्न म्हणून त्याने सुचवल्याप्रमाणे मी व तो एका मानसोपचारतज्जांकडे गेलो. पण त्यांनी मुलाचीच बाजू घेतली व सांगितले, “काहीना संत्री आवडतात तर काहीना सफरचंद आवडतात. कोणाची आवड बरोबर किंवा चुकीची असं ठरवता येत नाही.” मला त्यानुसार समजावले.

त्यांच्या सांगण्याचा मला प्रथम फार राग आला, पण नंतर हळूहळू मी मुलाच्या दृष्टीने विचार करू लागले. या विषयावरील सिनेमे पाहून व पुस्तके वाचून माझा विरोध बराचसा निवळला व त्यात काही वेगळे आहे असे मला तीव्रतेने वाटेनासे झाले. मुलाचं आयुष्य मार्गी लागावं, म्हणून एकदा मी, ‘तू एखादे मूळ दत्तक घे’ म्हणून हटूकेला. पण मुलाला लहान मुले अजिबात आवडत नसल्यामुळे त्यानी माझ्या सूचनेकडे पूर्णपणे

दुर्लक्ष केले.

मुलाने या वेळी नोकरी सोडून दिली व एक ट्रस्ट स्थापन करून त्याचे काम तो पूर्णविळ पाहू लागला. त्याने नोकरी सोडून ट्रस्ट सुरु करूनये अशी माझी इच्छा होती. नोकरी सोडली तर आर्थिकदृष्ट्या त्याचे कसे होणार ही मला काळजी होती, पण त्याने हड्डाने त्याचेच खरे केले.

पुढे या विषयावर त्याने चार पुस्तके लिहिली. पहिल्या पुस्तकाचं समीक्षण सकाळमध्ये आलं. हे पुस्तक समलैंगिकतेवर असल्यामुळे सर्वाना कळेल व गावभर होईल अशी भीती होती. माझे त्याच्याशी या विषयावर वादही झाले. “तू आम्हाला सांगितलंस ना? मग जगजाहीर का करतोस? ही काही सगळ्यांना सांगण्याची गोष्ट आहे का?” पण त्याने कोणाचे काही ऐकले नाही. त्याला मनात येईल तसाच तो वागू लागला.

पुढे त्याने त्याच्यासारख्या मुलांसाठी हेल्पलाइन सुरु केली. मग टीव्हीवर मुलाखत देऊन आपण समलिंगी आहोत हे त्याने सर्वाना सांगितले. आता सर्वानाच हे कळल्यामुळे आम्ही पुन्हा काळजीत पडलो. जवळपासच्या लोकांना टीव्ही पाहून ही गोष्ट कळली होती, पण तोंडावर कोणीच काही बोलत नव्हते. त्यामुळे तर आम्ही जास्तच कानकोंडे झालो. पण त्यातूनही आम्ही बाहेर पडलो.

मुलाचे काम प्रथम तो एकटाच करायचा. त्याच्यासारख्या मुलांमध्ये आत्मविश्वास जागृत करण्याचे काम तो करत होता. महाराष्ट्राच्या वेगवेगळ्या भागांतून त्याला फोन येत होते. अशी मुले घरी किंवा बाहेरही काही सांगू शकत नसत व घरातल्यांच्या लग्नाच्या आग्रहाला कसा विरोध करावा या विवंचनेत असत. अशा मुलांना दिलासा देण्याचे काम माझ्या मुलाने केले. एका मुलाच्या पालकांनी जेव्हा फोनवर माझ्याशी बोलून आभार मानले, तेव्हा माझ्या मुलाबद्दल मला फार अभिमान वाटला. हळूहळू मला त्याच्या कामाचं महत्त्व कळू

लागलं.

अमेरिकेत व्यक्तिस्वातंत्र्य असल्यामुळे अशा मुलांना तेथे राहाणे अवघड वाटत नाही, पण भारतातील सनातन विचारांमुळे त्यांची इथे राहण्यात घुसमट होते.

मागच्या वर्षी समलिंगी मुलामुलींच्या काही पालकांनी व काही मानसोपचारतज्ज्ञांनी ३७७ कलमाविरुद्ध सर्वोच्च न्यायालयात ऑफिडेव्हिट दाखल केले. ३७७ कलमाद्वारे समलिंगी मुलांच्या स्वातंत्र्यावर घाला येतो व त्यांना त्यांच्या इच्छेप्रमाणे त्यांची जीवनशैली जगता येत नाही, म्हणून हे कलम बदलावे असा तो अर्ज होता. माझ्या मुलासारख्या असंख्य मुलामुलींना न्याय मिळावा व त्यांच्या इच्छेप्रमाणे त्यांना जगता यावं, त्यांची घुसमट होऊ नये यासाठी मीही सर्वोच्च न्यायालयात ऑफिडेव्हिट दिले.

मध्यंतरी माझ्या मुलाने एका समलिंगी मुलाशी नातं जोडलं, त्याला घरीही आणलं. आतातरी मुलाच्या वाढ्याला सुख येईल, असे वाटत असतानाच त्यांचा ब्रेकअप झाला. त्यामुळे मुलगा खूप दुःखी झाला. त्याला खूप नैराश्य आले. काही महिन्यांनी तो त्यातूनही बाहेर पडला व पूर्वीच्याच जोमाने त्याच्या ट्रस्टचे काम करू लागला.

सुप्रीम कोर्टाच्या खटल्याचा निकाल अजून लागलेला नाही, पण आज नाहीतर उद्या तो लागून या मुलांना उजळ माथ्याने फिरता येईल व योग्य न्याय मिळेल याची मला खात्री वाटते.

माझ्या वैयक्तिक आयुष्याबद्दल भलेही मला सुना-नातवंडांचे, सर्वसाधारण स्त्रियांप्रमाणे प्रेम मिळाले नसेल, पण माझा मुलगा इतर मुलांना मदत करतो, हे पाहून मला कृतकृत्य झाल्यासारखे वाटते.

\*\*\*\*\*

## २. श्री. अनिल (हर्षवर्धनचे बाबा)

माझे बालपण एका लहान गावात गेले. आईवडील आणि आम्ही तीन भावंडे, अशी आमची ‘न्यूकिलअर फॅमिली’ होती. वडील डॉक्टर, आई गृहिणी. मी थोरला, मला दोन लहान बहिणी. आम्हा भावंडांचे शिक्षण मराठी माध्यमातून झाले. आम्ही भावंडे अभ्यासात तशी ठीकठाक होतो. मी आणि माझ्या मधल्या बहिणीने शालेय शिक्षणात बरी कामगिरी केली. पण माझी सगळ्यात धाकटी बहीण दहावीला बोर्डात दुसरी आणि बारावीला बोर्डात चक्क पहिली आली. तिचे वर्तमानपत्रात आलेले फोटो, तिच्या रेडिओवर झालेल्या मुलाखती (त्या वेळी टीव्ही नव्हता.) आणि तिचे सत्कारसमारंभ या गोष्टी आजही माझ्या स्मृतीमध्ये ताज्या आहेत. वडील शिक्षणाने आणि व्यवसायाने डॉक्टर. ते नास्तिक (अज्ञेयवादीही म्हणता येईल) विचारसरणीचे. त्या बाबतीत आई बहुधा ‘तळ्यात मळ्यात’ अशी. तिने लग्नानंतर एकस्टर्नली बी. ए. केले. तिच्या मदतीने वडिलांनी मॅटर्निटी होम सुरु केले आणि सुमारे दहा-बारा वर्ष चालवले. तिच्या मॅटर्निटी होममध्ये सुमारे एक हजार प्रसूती झाल्या. घरात देवघर होते पण कर्मकांड नव्हते. घरी नॉन-व्हेज शिजायचे. वडिलांना मात्र सुपारीच्या खांडाचेही आकर्षण नव्हते. कधीतरी त्यांना सिगारेट ओढताना पाहिल्याचे आठवते. पण मद्य वगैरे? छेछे! बातच सोडा. आम्हा भावंडांचे बालपण सुखात गेले. आमचे कुटुंब आर्थिकदृष्ट्या सुस्थितीत होते. माझे वडील मुळातच स्थिर बुद्धी असलेले असे आहेत. त्यामुळे त्यांची जीवनशैली साधी आणि सरळ होती. व्यवसायाने डॉक्टर असल्याने समाजात त्यांना मान असे. माझी आई मात्र भावनाप्रधान स्वभावाची. तिला संगीत आणि

साहित्य या दोहोंची अतिशय आवड. घरात काम करताना तिला कायम रेडिओ हवा असायचा. तिला शास्त्रीय संगीत फार प्रिय होते. तिची त्यातली जाणही प्रगल्भ होती. तिच्यामुळे आम्ही भावंडे राग ओळखायला शिकलो. एखादा राग आणि त्याच रागातले फिल्मी गाणे किंवा मराठी भावगीत या दोहोंच्या स्वरसमूहांमधील साधम्यावरून त्या रागाचे स्वरूपवैशिष्ट्य आत्मसात करण्याची ‘डायरेक्ट मेथड’ तिने आम्हाला शिकवली. तिच्यामुळे आम्ही भावंडे संगीतप्रेमी झालो. आम्ही तिघाही भावंडांनी शालेय वयात शास्त्रीय संगीताचे पद्धतशीर शिक्षण घेतलेले आहे. माझी मधली बहीण खरेतर मोठी गायिकाच व्हायची. तिचा आवाज अतिशय गोड आणि गळा उत्तम फिरता. पण एखाद्या गोष्टीचा योग येत नाही तसे काहीसे तिच्या बाबतीत घडले.

संगीताबरोबरच आमच्या घरात सर्वांनाच वाचनाचीही अतिशय आवड होती. घरात तऱ्हेतऱ्हेचे वाचनीय साहित्य कायम येत असे. त्या दिवसांत ‘फिरते वाचनालय’ असायचे. साधारण दर आठवड्याला एक गृहस्थ (त्यांचा मुलगा माझा मित्र होता.) मासिकांचा गळा घेऊन घरी यायचे. एक चालू महिन्याचे आणि एक गेल्या महिन्याचे (किंवा त्याही आधीच्या मंहिन्याचे) अशी दोन मासिके मिळत. ‘हंस’, ‘नवल’, ‘मोहिनी’, ‘बुवा’, ‘अमृत’, ‘वसुधा’, ‘माहेर’, ‘ललना’ अशी मासिके तेव्हा असत. ‘अप्सरा’, ‘रंभा’, ‘पैंजण’ अशा शृंगाररसाला वाहिलेल्या (असा उल्लेख बहुधा त्या मासिकांमध्ये असायचा.) मासिकांमधल्या कथांमध्ये- ‘त्याने तिला बाहुपाशात घेऊन तिच्या ओठांवर आपले ओठ टेकले’ यासारखी प्रणयक्रीडेची रसभरित वर्णने असायची. पण मी तसले मासिक वाचत असलो, की आईला ते मुळीच आवडायचे नाही. ती मला “काय उगीच ती पांचट मासिकं वाचतोयस...” असे म्हणून रागे भरायची. ‘सोबत’ आणि ‘माणूस’ ही पाक्षिकेही आमच्याकडे येत.

वर उल्लेखलेल्या मासिकांपेक्षा यातील साहित्य वेगळ्या जातकुळीचे असे, हे त्याही वयात मला जाणवत असे. ‘माणूस’मध्ये क्रमशः येणाऱ्या ‘माँटीज डबल’ किंवा ‘सिंक द बिस्मार्क’ अशा गोष्टी मला अतिशय भावत. याच सुमारास मी एका मराठी वाचनालयाचा सदस्य झालो आणि अक्षरशः पुस्तके चरलो. माझा वाचनाचा वेग खूप जास्त असे. एकदा असेच एक बरेच मोठे पुस्तक (बहुधा ब. मो. पुरंदरे यांचे ‘राजा शिवछत्रपती’) माझे वाचून संपले. पण ते इतक्या कमी वेळात संपले, की माझ्या आईचा त्यावर विश्वासच बसेना. शेवटी मी तिला जणू आव्हानच दिले, की तू मला या पुस्तकातले काहीही विचार, मी सांगतो की नाही बघ. आणि तसे खरंच झालेही.

एखादे पुस्तक कसे भारून टाकू शकते याचा अनुभव मला ‘द गॉडफादर’ ही काढंबरी वाचताना आला. मी तेव्हा इंजिनिअरिंगच्या शेवटच्या वर्षात होतो. त्या काढंबरीमध्यल्या निहिटे कॉर्लीयॉनी, मायकेल कॉर्लीयॉनी आणि अन्य व्यक्तिरेखांनी मी अतिशय प्रभावित झालो होतो. एकीकडे असे वाटायचे, की गुन्हेगारीवर आधारित अशी काढंबरी आपल्याला भावते आहे हे बरोबर नाही पण त्यातल्या बुद्धी आणि भावना यांच्या ताण्याबाण्याच्या चित्रणाने मला भारून टाकले होते. पुढे याच काढंबरीवर आधारित निघालेली सिनेमाची त्रयीही माझी ‘फैन्हरिट’ झाली.

मला खेळाचीही अतिशय आवड होती. गावाकडे सहसा कबड्डी, खोखो असे खेळ असायचे. खेळाचा नाद लागल्यावर संगीत-शिक्षण बंद झाले. आम्ही काही मित्रांनी क्रिकेटची टीम सुरू केली. आमच्या लेव्हलला मी चांगला खेळायचो. आक्रमक बॅटिंग करणे हा माझा विशेष गुण होता. पण नोकरीच्या निमित्ताने शहरात आल्यावर क्रिकेट मागे पडले.

मी यथावकाश इंजिनिअर झालो आणि नोकरीच्या निमित्ताने शहरात आलो. माझ्या वडिलांनी इथे घर बांधले होते. सुरुवातीची काही वर्षे एका मोठ्या उद्योगात नोकरी केली; पण नोकरीत मन काही रस्ते नाही. शिवाय स्वतःचा उद्योग असावा अशी महत्वाकांक्षा होतीच. त्यामुळे असेल कदाचित, पण मी नोकरी सोडली आणि माझ्या एका मित्राच्याबरोबर भागीदारीत स्वतःचा लघुउद्योग सुरू केला. दरम्यान माझे लग्न झाले. माझे लग्न बघून वगैरे झालेले आहे. म्हणजे प्रेमविवाह नव्हे अशा अर्थानि. माझी पत्नी सुलभा इंजिनिअरिंगमधील पदवीधर आहे. आमचे लग्न झाले तेव्हा ती नोकरी करत असे. लग्न झाल्यावर वर्षभरातच मी नोकरी सोडली आणि कारखाना सुरू केला. त्यानंतर सुमारे दहा वर्षे सुलूने नोकरी केली. म्हणजे करावीच लागली. कारण मला माझ्या व्यवसायातून फारसे पैसे मिळायचे नाहीत. त्यामुळे तिच्याच पगारातून घर चालायचे. मी कारखान्यात खूप राबायचो. सुरुवातीला काही धड व्हायचेच नाही. मी आणि माझा भागीदार इंजिनिअर होतो, पण धंद्याचे सगळे वेगळेच असते. पण मला कारखान्यात काम करताना मजा येत होती हे नक्की. रोज नवीन आव्हान, नवीन प्रश्न, नवीन समस्या. तेव्हा वयही लहान होते, मी एकदम तंदुरुस्त होतो आणि डोक्यात कसलीशी नशा होती. मी खूप काम करायचो. डोक्यात सारखा विचार कारखान्याचाच:

याच सुमारास हर्षवर्धनचा जन्म झाला. सुलू प्रेग्नेंसीच्या शेवटच्या टप्प्यात तिच्या आईकडे गेली होती. त्यामुळे हर्षूच्या जन्मानंतर पहिले काही आठवडे हर्षूचा आणि तिचा मुक्काम आजोळी होता. हर्षूच्या जन्माच्या वेळी मी सुलूच्या बाजूला उभा होतो. तिच्याच शारीरातून असे सुळळकन बाहेर आलेले बाळ बघून माझे मन अनिर्वचनीय अशा भावनेने भरून गेले होते. आपल्याला मुलगा झाला या जाणिवेने मला तेव्हा

नवकी काय वाटले होते हे मला आज स्मरत नाहीये. आनंद झाला होता हे नवकी, पण माझ्या मनात जाग्या झालेल्या भावनांचे, विचारांचे स्वरूप नेमके काय होते हे आजमितीला मला खरोखरीच आठवत नाही. किंबहुना जेव्हा आम्हाला (म्हणजे मला व सुलूला आणि आमच्या कुटुंबातल्या इतर जणांना) आमच्याकडे 'गडबड' आहे हे कळले तेव्हा काय काय घडले याचे तपशील माझ्या स्मृतिमंजूषेत खूपच धूसर झाले आहेत, हे मला प्रकर्षने जाणवते आहे. म्हणजे, याचा संबंध माझ्या स्मृतिभ्रंशाशी किती आणि माझ्या तुटलेपणाशी किती? – नाही सांगता येत.

आज मागे वळून बघताना मला असे जाणवते, की लग्न या गोष्टीशी मला (आणि बहुधा सुलूलाही) नीटसे जुळवून घेता आले नव्हते. अक्षरशः नुसते 'पाहून केलेले लग्न' या घटनेशी मी नीट रुळलो नव्हतो. अर्थात तसे उत्तम चालले होते. लग्नानंतर दोन वर्षांत मुलगा झाला यातच सारे काही आले, नव्हे का? लग्नाळू वयात लग्न या विधीबद्दल किंवा लग्न या संकल्पनेबद्दल काही नकारात्मक गोष्टींची जाणीव झाली होती. विशेषत: लग्नामुळे स्त्रियांच्या स्वाभाविक स्वातंत्र्यावर पडणाऱ्या अन्याय्य मर्यादा, या गोष्टीचा एक पुरुष म्हणून माझ्या मनात गंड निर्माण झाला होता. गावी असताना मित्रांच्या बरोबर मुलगी पाहण्याच्या 'चहा-पोह्यां'च्या कार्यक्रमांना मी गेलेलो आहे. त्यावेळी लग्नाळू मुलगा अक्षरशः उल्लू झालेला असायचा आणि त्याची दोस्तमंडळी आंबटचिंबट थट्टा करत असायची. माझ्या लग्नाच्या आधी केवळ तीन आठवडे माझ्या मधल्या बहिणीचे लग्न झाले. पण तिचे लग्न करायचे हा संकल्प झाल्यापासून लग्न होईपर्यंत तिला ज्या ज्या अनुभवांमधून पार व्हावे लागले, त्याचा मी साक्षीदार होतो. कुठल्याही निकषांनुसार माझ्या बहिणीचे व्यक्तिमत्त्व प्रथम दर्जाचे आहे यात शंकाच नाही. पण लग्नाच्या .....

बाजारात एक स्थळ म्हणून उभे राहिल्यावर, केवळ ती एक स्त्री आहे, पुरुष नाही, या एका कारणासाठी तिला कशा कशा तेजोभंग करणाऱ्या अवस्थांतून जावे लागले हे मी पाहिले. या साऱ्याला केवळ पुरुषप्रधान संस्कृती कारण आहे हे न समजण्याएवढा मी निर्बुद्ध नव्हतो. ‘बघून लग्न करणे’ या गोष्टीबद्दल एक पुरुष म्हणून माझ्या मनात नकारात्मक भाव तयार झाला होता. लग्नासारख्या रोमांटिक घटनेच्या निमित्ताने आपल्याकडून आपल्या बायकोबाबत तसे घडू नये म्हणून त्याबद्दल मी अतिसंवेदनशील झालो होतो. मला सांगून आलेल्या स्थळांच्या ‘एन्हलप्स’चा हा एवढा ढीग झाला होता. प्रत्येक एन्हलप्समध्ये मुलीचा फोटो. इतके फोटो बघून माझे काय झाले असेल हे माझे मलाच माहीत. घरी हे बोलून दाखवल्यावर घरच्यांनी माझा मुद्दा समजून घेतला. पण त्यावर असा युक्तिवाद केला, की ‘हे असेच असते. तुला काही वेगळा मार्ग सुचत असेल तर सांग.’ त्यांचेही बरोबरच होते. ‘तू तुझे जमव. आहे का कोणी?’ असाही बिनतोड मुद्दा माझ्यासमोर मांडला गेला. मीही एक पुरुष होतो. तोवर मला वयात आल्याला दहा वर्षे होऊन गेली होती. मनात स्त्रीसुखाची ओढ तर अनावर होती यात शंकाच नाही. त्या वयात प्रत्येक स्त्री आवडायची. पण मग प्रत्येक स्त्रीशी आपण लग्न कसे करणार? ‘ते’ सुख मिळवण्याचा एकुलता एक मार्ग म्हणजे ‘लग्न’ हे कर्मकांड आणि हे जिच्याबरोबर करायचे ती एकुलती एक स्त्री म्हणजे पत्नी- हे मानायला माझी तयारी होत नव्हती. अर्थात हे मी आत्ता जितकं स्पष्ट शब्दात मांडू शकतो आहे तितकं स्पष्ट मला तेव्हा उमजलेलं नव्हतं.

हर्षूचं बालपण कसं होतं हे मला बन्यापैकी स्पष्ट स्मरते आहे. त्याचा जन्म झाला तेव्हा माझे आईवडील अजूनही गावीच होते. त्यावेळी आमच्या बंगल्याच्या एका भागात माझी आत्या, एका भागात

माझे काका आणि एका भागात मी, असे राहात असू. त्यामुळे एकत्र कुटुंबपद्धतीसदृश वातावरणात हर्षूचे बालपण गेले. काही दिवसांनी माझे काका त्यांच्या नव्या घरी गेले आणि त्यांच्या जागेत माझी मधली बहीण राहायला आली. तिचा मुलगा वरुण हर्षूपेक्षा सव्वा वर्षाने मोठा. त्यामुळे हर्षू आणि वरुण अगदी पाठच्या भावंडांसारखे वाढले. हर्षू लहानपणी अगदी गोड दिसायचा. तो गुबगुबीत शरीरयष्टी असलेला आणि हसरा होता. त्याचा स्वभावही अगदी खेळकर होता. त्याची आणि माझी चांगलीच गट्टी होती. त्याला कडेवर घेऊन, माझ्या खांद्यावर त्याची मान टेकवून, गच्चीमध्ये फेच्या मारत त्याला झोपवणे हा माझ्यासाठी अपूर्व आनंद देणारा अनुभव होता. मी आणि सुलू, आम्ही दोघेही दिवसभर घराबाहेर असल्याने हर्षू अगदी चार महिन्यांचा असल्यापासून आम्ही त्याला पाळणाघरात ठेवत असू. पाळणाघरात तो चांगला राहात असे. पाळणाघर चालवणाऱ्या दिघेबाई फारच प्रेमळ होत्या. मुलं त्यांना दिघेआई म्हणत. पाळणाघरात गेल्यामुळे हर्षू एकलकोंडा झाला नाही. पाळणाघरातील चार वर्ष त्याच्या जडणघडणीतली महत्त्वाची वर्ष आहेत हे नक्की.

हर्षूच्या बालपणात त्याच्यावर सर्वांत जास्त प्रभाव पाडणारी व्यक्ती म्हणजे माझी आत्या. आम्ही तिला जिजी म्हणत असू. हर्षू झाला तेव्हा ती सुमारे साठीची असेल. तिचा हर्षूवर आणि हर्षूचाही तिच्यावर फार जीव होता. जिजी हर्षूला रोज पाळणाघरातून चार वाजताच बाबागाडीतून घरी आणायची. ती त्याला लाडाने गोट्या म्हणायची. (आता हर्षू मोठा झाला आहे तरीही मी त्याला अजूनही लाडाने 'गोट्याऽऽ' अशी हाक मारतो.) रोज रात्री झोपायला स्वारी जिजीकडेच असायची.

हर्षूला आम्ही सुरुवातीला घराजवळच्या शाळेतच घातला. पण

सुलूची अशी फार इच्छा होती, की शहरातल्या एका प्रख्यात इंग्रजी माध्यमाच्या शाळेत त्याला घालावे. त्या शाळेत प्रवेश मिळवायला खूप स्पर्धा असायची. आम्ही हर्षूसाठी त्या शाळेच्या पहिलीच्या वर्गाचा प्रवेश अर्ज आणला. त्याला इंटरव्हूसाठी बोलावणे आले. आम्हाला वाटले, झाले. हर्षूला नक्की प्रवेश मिळणार. पण इंटरव्हूमध्ये हर्षू काही बोलायलाच तयार होईना. इंटरव्हूमध्ये त्याला एक चित्र दाखवले. त्यात एक मांजर होते. हे काय आहे असे त्याला विचारल्यावर त्याने चक्क 'उंदीर' असे सांगितले. अर्थातच हर्षूला त्या वर्षी प्रवेश मिळाला नाही. त्यामुळे पहिली आणि दुसरी ही दोन वर्षे तो घराजवळच्या शाळेतच गेला. पण हे एका अर्थनि चांगलेच झाले. जाण्या-येण्याचा त्रास नव्हता, पण सुलूने त्याला तिसरीच्या वर्षात पुनश्च एकदा त्या शाळेच्या प्रवेश परीक्षेला बसवला. प्रथम एक लेखी परीक्षा झाली. मग इंटरव्हू. पण या खेपेला मात्र त्याला प्रवेश मिळाला. सुलूचे स्वप्न साकार झाले.

हर्षूची तिसरी ते दहावी ही वर्षे कशी भुर्कन पार पडली ते मला कळलेच नाही. हर्षूची ही शाळा खरंच खूप छान आहे. प्रशस्त इमारत, मोठे ग्राउंड. हर्षूनेही ती सात वर्षे खूप छान एन्जॉय केली. सुरुवातीला तो रिक्षाने जायचा, मग सायकलने. अभ्यासात तो चांगलाच होता. त्याने सातवीत असताना गणित अध्यापक महामंडळाच्या गणिताच्या परीक्षा दिल्या होत्या. या परीक्षेमध्ये त्याने उत्तम यश संपादन केले होते. अगदी पेपरमध्ये त्याचे नावही आले होते. त्याची 'एनटीएस' (नॅशनल टॅलंट सर्च) शिष्यवृत्ती अगदी थोडक्यात हुकली.

हर्षूच्या अंगात उत्तम कलागुणही आहेत. तो लहानपणी उत्तम चित्रे काढी. पण संगीतामुळे चित्रकला मागे पडली. त्याचे हस्ताक्षर वळणदार होते. (होते असे म्हणण्याचे कारण आजकाल तो फरकाटे ओढतो.) पण त्याला सगळ्यात जास्त प्रिय आहे संगीत. आमच्या सोसायटीमध्ये एक

दातेआजी म्हणून होत्या. त्यांनी काही मुलांचा एक गट तयार करून त्यांच्याकडून गीतरामायणातली गाणी बसवून घेतली होती. या गटात हर्षू सामील झाला होता. या निमित्ताने त्याच्या आयुष्यात संगीताचा प्रवेश झाला. पुढे त्याने त्याचे संगीताचे अंग चांगलेचं विकसित केले. विशेषतः आज तर संगीत हा त्याच्या जीवनातला (आणि त्याच्या व्यक्तिमत्त्वाचाही) सर्वांत महत्त्वाचा पैलू आहे असे म्हटल्यास योग्य ठरेल. आज तो बैठकीत विलंबित ख्याल पेश करू शकतो. त्याच्या गळ्याला शास्त्रीय संगीताची बैठक असल्याने तो सुगम संगीतही उत्तम गातो. त्याचे स्वर पक्के लागतात. त्याच्या आवाजाला उत्तम फिरत आणि रेज आहे. तो लहान असताना घरात मुक्तपणे गायचा. अगदी शाळेतून घरी आल्या आल्या त्याची लकेर ऐकू यायची आणि घरातले सगळे लोक कौतुकाने म्हणायचे 'आले गवईबुवा.' तो गाणे म्हणायला कधीही लाजत किंवा संकोचत नाही. Singing comes to him just naturally. त्याने मला एकदा सांगितले होते, की त्याला अनेक मित्रमैत्रिणी गाण्यामुळे गिळाले.

हर्षू लहानपणापासूनच हळुवार स्वभावाचा आहे. म्हणजे मुले कशी 'दांडगोबा' म्हणावी अशी असतात, तसा तो कधीच नव्हता. त्याचे सगळे कसे शैलीदार असायचे. तसा त्याने कधीकधी हड्ही केलेला आहे. एकदा असाच त्याने कशाचा तरी हड्ह घेतला होता. काही केल्या ऐकेचना. माझी तार तुटली आणि मी त्याला त्याच्या कुलल्यावर सटकन फटका मारला. तो डोळे मोट्टे करून माझ्याकडे बघतच राहिला. मलाच खूप वाईट वाटले. त्याच्या नाजूक कुलल्यावर माझ्या फटक्यामुळे वळ उठला होता. मला हे बघून कसेसेच झाले. बाहेर समाजात आपण नाही नाही ते अन्याय संहन करतो आणि आपल्या निष्पाप पोराने जरा हड्ह केला तर आपण त्याच्या नाजूक अंगावर वळ उठण्याएवढे जोरात

मारले, या जाणिवेने मला अतिशय वाईट वाटले. त्यानंतर हर्षूला मी कधीही मारले नाही.

हर्षूला खेळाची मात्र फारशी आवड नव्हती. मला असे फार वाटे, की त्याने कुठल्यातरी खेळात प्रावीण्य मिळवावे. मला आठवते, मी एकदा त्याला अगदी जवळ बसवून प्रेमाने विचारले होते- “हर्षू, तुला कुठला खेळ सर्वात जास्त आवडतो?” मला उत्तर अपेक्षित होते- टेनिस (हर्षूला जरी स्वतःला खेळण्याची फारशी आवड नसली तरी तो विम्बल्डन किंवा अन्य टेनिस टुर्नामेंट्स टीव्हीवर आवडीने पाहात असे. स्टेफी ग्राफ किंवा मोनिका सेलेस या त्याच्या आवडत्या टेनिस खेळाढू होत्या असे मला स्मरते.) किंवा क्रिकेट. पण आमच्या चिरंजीवांनी काय उत्तर दिले असेल?... दगड का माती.

मला ट्रेकिंगची अतिशय आंवड आहे. माझ्या बरोबरीची काही मंडळी आपापल्या मुलामुलींना ट्रेकला घेऊन येत. एकदा मीही हर्षूला विचारले, पण त्याने त्यात फारसा रस दाखवला नाही. पुढे एकदा मी हिमालयात ट्रेकला चाललो होतो तेव्हाही मी त्याला येतोस का? असे विचारले. पण तेव्हा त्याने विचारले, की तिथे टॉयलेट्स असतात का? पण पुढे कॉलेजात गेल्यावर मात्र त्याला ट्रेकिंगची आवड निर्माण झाली.

हर्षू तसा चांगलाच टफ आहे. शारीरिकदृष्ट्या एकदम फिट आहे. अर्थात तो आत्ता त्याच्या सर्वोत्तम वयात आहे. मानसिकदृष्ट्याही तो कणखर आहे. त्याच्या या वैशिष्ट्याचा अनुभव आम्ही अनेक वेळा घेतला आहे.

हर्षूचे शालेय शिक्षण व्यवस्थित पार पडले. मला मात्र या आठ-दहा वर्षांतले बारीकसारीक तपशील फारसे लक्षात नाहीत. मी माझ्या कामात अक्षरशः बुडालेलो होतो. दरम्यान माझा व्यवसायही सुरुवातीच्या संघर्षाच्या अवस्थेतून बाहेर पडला होता आणि आम्ही

बन्यापैकी स्थिरावलो होतो.

पण का कोणास ठाऊक, याच सुमारास (हर्षू त्यावेळी सातवीत असेल) मला माझ्या व्यवसायात काम करण्यासंबंधाने काहीशी निरिच्छा वाटू लागली. ते ‘डिप्रेशन’ होते का त्या धकाधकीचा मला खरोखरीच प्रामाणिक आणि निरोगी कंटाळा आला होता, हे मला या क्षणी सांगता येत नाही. पण मी असा निर्णय घेतला, की माझ्या व्यवसायातून निवृत्त व्हावे. माझा भागीदार, माझे कुटुंबीय आणि माझ्या मित्रमैत्रिणी हे सारेच माझ्या या निर्णयाने अवाक् झाले. सगळ्यांनी माझे मन वळवायचा प्रयत्न केला. तू निवृत्त होऊन करणार काय? हा सगळ्यांना पडलेला प्रश्न होता. पण ‘करेन काहीतरी’ – या व्यतिरिक्त माझ्याकडे ही उत्तर नव्हते. To cut the long story short, सुलूने अशी तयारी दाखवली, की ती माझ्या जागी काम करू लागेल. त्यामुळे सर्वच प्रश्न सुटले. सुलूने घेतलेला हा निर्णय खूपच धाडसी होता.

या सगळ्या घडामोडी एका बाजूला सुरु होत्या. दरम्यान हर्षूचे शिक्षण व्यवस्थित सुरु होते. तो दहावी झाला आणि त्याने अकरावी सायन्सला प्रवेश घेतला. बघता बघता अकरावीचे वर्ष संपले. आता बारावी. साक्षात कसोटीचे वर्ष.

हर्षूचे आजवरचे शिक्षण (आणि एकूणच सगळे) उत्तम पार पडले होते. त्याने आम्हाला पालक म्हणून एकदाही तक्रारीला संधी दिली नव्हती. दहावीत त्याला सत्याऐंशी टक्के मार्क होते. सध्याच्या ‘टेन प्लस टू’च्या जमान्यात अकरावीचे वर्ष म्हणजे लुट्रपुटीचेच असते. त्यातही तो शाळा या अवस्थेतून कॉलेज या अवस्थेत जात होता. त्यामुळे अकरावीचे वर्ष त्याने अगदी मजेत घालवले. पण अकरावीच्या वर्षाच्या शेवटच्या काही दिवसात घरात, आता पुढे काय? अशी चर्चा सुरु झाली. हर्षूला गणितात खूपच रस होता आणि गतोही उत्तम होती.

त्यामुळे त्याने अकरावीला गणितच घेतले होते. (म्हणजे बायॉलॉजी सोडले होते.) म्हणजे थोडक्यात तो इंजिनिअरिंगला जाणार असे आम्ही गृहीत धरून चाललो होतो. (एकदा त्याने मला पुढे गाणेच शिकायचे आहे असाही प्रस्ताव मांडला होता आणि नुसता मांडला नाही तर चांगलाच लावून धरला. पण त्याला आम्ही कसेबसे पटवून दिले, की शिक्षण आणि गाणे हे दोन्ही करता येईल. त्यासाठी शिक्षण सोडण्याची गरज नाही.) बारावीचे वर्ष सुरु झाले. त्या वेळी मी त्याला सांगितले, की जर तुला इंजिनिअरिंगच करायचे असेल तर 'आयआयटी' हे ध्येय ठेव. मी त्याच्यासाठी ब्रिलियंट ॲकेडमीचे कोर्स-मटिरिअलही मागवत असे. पण हा पळुच्या ती एन्हलप्स न फोडताच डायरेक्ट माळ्यावर टाकून देत असे. घरात त्याला स्वतंत्र खोली होती. तो घरी असे तेव्हा अनेकदा खोलीत आतून कडी लावून बसे. त्याच्या वागण्यात आक्षेपार्ह असे काहीही नव्हते.

बारावीची परीक्षा तर पार पडली. त्या वर्षी त्याने आयआयटी एन्ट्रन्सचा फॉर्म भरला होता की नाही मला नीटसे आठवत नाही. पुढे काय? अशी घरात चर्चा सुरु झाली, तेव्हा त्याने मी एक वर्ष इॉप घेऊन आयआयटीच्या एन्ट्रन्सची तयारी करणार असे जाहीर केले.

हर्षूने वर्षभर उत्तम अभ्यास केला आणि आयआयटीत प्रवेश मिळवला. हर्षूने मिळवलेल्या यशाने आमच्या आनंदाला पारावार राहिला नाही.

आयआयटीमध्येही हर्षू उत्तम रुळला. तो होस्टेलला राहायचा. होस्टेलमध्ये त्याला नवे मित्र मिळाले. त्याचा अभ्यास तर व्यवस्थित सुरु होताच पण एकस्ट्रा-करिक्युलर गोष्टीही जोरात चालायच्या. गाणे तर सुरु होतेच, ते वेगळे सांगायला नको.

हर्षू त्या वेळी आयआयटीच्या चौथ्या वर्षाला होता. तो सुट्टीसाठी

घरी आला होता. हर्षूने मला आणि सुलूला आमच्या बसायच्या खोलीत बोलावून घेतले आणि गंभीर चेहन्याने मला तुम्हाला काही महत्वाचे सांगायचे आहे असे सांगितले. तो नुकताच एका शिबिराला जाऊन आला होता. तरुण-तरुणींची स्वतःबद्दल, समाजाबद्दल, देशाबद्दल आणि एकूणच आयुष्याबद्दल समज विकसित व्हावी असा या शिबिरामागील उद्देश होता. त्या शिबिरात सामील झालेल्या तरुणाईला त्यांच्या लैंगिकतेबद्दल सजग करण्याच्या दृष्टीने एक सत्र आयोजिले होते. हर्षूने त्या सत्राची हकीकत सांगायला सुरुवात केली. त्या सत्राच्या शेवटी कुणाला काही सांगायचे आहे का? असे विचारल्यावर याने हात वर केला आणि सर्वांना असे सांगितले, की माझ्या लैंगिक कलाबद्दल माझी मनःस्थिती द्विधा आहे. मी भिन्नलिंगी नाही असे मला वाटते. मी हर्षूचे हे बोलणे ऐकून आश्चर्यचकित झालो. मी त्याला विचारले, “तू जे सांगतो आहेस याबद्दल तुझी खात्री आहे का?” त्यावर त्याने मान डोलावून “हो” असे उत्तर दिले. सुलूनेही त्याला काही प्रश्न विचारले. नक्की काय ते या क्षणी मला स्मरत नाही. पण हर्षूच्या या सांगण्यामुळे माझ्या डोक्यात विचारांचे मोहोळ उठले. मला समलैंगिकता या विषयाबद्दल थोडीफार माहिती होती. पण हा विषय माझ्या स्वतःच्या आयुष्यात असा थेट प्रवेश करेल हे माझ्यासाठी सर्वस्वी अनपेक्षित होते. त्या दिवसांत हर्षू होस्टेलवर राहायचा. त्यामुळे तो पुढच्या एक-दोन दिवसात होस्टेलवर निघून गेला. सुलूने तर त्यावेळी मनाची अशी खात्री करून घेतली होती, की हर्षूच्या डोक्यात उगाचच नसते काहीतरी खूळ शिरले आहे. काही दिवसांनी ते निघून जाईल. पण मला मात्र तसे वाटत नव्हते.

आमचे (म्हणजे मी आणि सुलू असे दोघांचे) नंतरच्या वर्ष दोन वर्षांत हर्षूबरोबर या विषयी काय काय बोलणे झाले हे आजमितीला मला .....  
मनाचिये गुंती

सुस्पष्टपणे आणि एकएक प्रसंग असे तपशीलवार सांगता येणार नाही. वर सांगितलेला, त्याने आमच्याबरोबर पहिल्यांदा त्याच्या लैंगिकतेचे प्रकटीकरण केल्याचा म्हणजे कमिंग आउटचा नक्की दिवस माझ्या लक्षात नाही. पण त्यानंतर दोन वर्षे अशीच गेली. शिक्षण संपल्यावर त्याने लगेच नोकरी न करण्याचा निर्णय घेतला. विद्यार्थिदशेत त्याने भाग घेतलेल्या विविध उपक्रमांचा प्रभाव त्याच्या मनावर होताच. त्याने पुढील दोन वर्षे अन्य काही क्षेत्रात काम करावे असे ठरवले. या निमित्ताने तो सुरुवातीला ठाणे, मग नाशिक आणि या व्यतिरिक्त अन्य काही गावी राहात असल्यामुळे तो पुढे नक्की काय करणार याबद्दल आम्ही दोघेही चिंतेत होतो आणि त्यात तो घरी येऊन-जाऊन असे. त्यामुळे त्याच्याशी फारसा संवाद होत नसे. त्याच्या कामामुळे मात्र त्याला अगदी वेगळ्या वातावरणात वावरण्याचा अनुभव मिळाला. या आधीचे त्याचे पंधरा-सोळा वर्षांचे आयुष्य कॉन्नहेंट शाळा, आयआयटी या सारख्या वातावरणात गेले होते. त्या तुलनेत या नंतरच्या दोन वर्षांत त्याच्यावर झालेले संस्कार वेगळ्याच पठडीतले होते. मुख्यतः आपला प्रदेश, तेथील सामाजिक वातावरण, राजकीय संदर्भ, सरकारी यंत्रणा अशा अनेक गोष्टी त्याला जवळून बघायला मिळाल्या. जातपात, गरिबी, शिक्षणाचा अभाव, अंधश्रद्धा अशा अनेक गोष्टींबद्दलची त्याची समज विकसित झाली. त्याच्या मित्रमैत्रिणींचा खूप मोठा परिवार तयार झाला. त्यांच्यामध्ये भारतीय राज्यघटना, माहिती अधिकार, ‘सस्टेनेबल मॉडेल ऑफ ग्रोथ’, लोकपाल अशा विषयांवर चर्चा घडत. त्याचे वाचनही खूप वाढले. वाचनाचे विषयही गंभीर स्वरूपाचे असत.

या पार्श्वभूमीवर हर्षूने आपल्या लैंगिकतेबद्दल केलेल्या प्रकटीकरणाला आम्ही दोघेही, म्हणजे मी आणि सुलू सामोरे जाण्याचा प्रयत्न करत होतो. वर्तमानपत्रे, मासिके अशा उपलब्ध स्रोतांमधून जी जी

माहिती मिळेल ती मी वाचत असे. पण ती माहिती पूर्णपणे विश्वासार्ह आणि अचूक आहे का नाही हे मात्र कल्पना नव्हते. याबद्दल बाहेर मोकळेपणाने बोलणे योग्य होईल की नाही हेही समजत नव्हते. पण या विषयाचे जे काही अल्पसे आकलन झाले होते त्यावरून मनाची अशी धारणा झाली होती, की हे जे काही आहे ते सर्वथैव नैसर्गिक आहे. त्या संबंधाने चांगले-वाईट, चूक-बरोबर असे मूल्यमापनात्मक संदर्भ अप्रस्तुत आहेत. एखादी व्यक्ती डावखुरी असावी तसेच काहीसे हे आहे. अशा विचारांमुळे आपला मुलगा समलिंगी आहे या वस्तुस्थितीची स्वतःला त्रास न होऊ देण्यासाठी खूपच मदत झाली. पण हे म्हणतानाच, या गोष्टीचा मला त्रास होत होता, हे मी कबूल करतो आहे न? का बरं मला त्रास व्हावा या गोष्टीचा? माझा मुलगा जर डावखुरा असता तर मला असा त्रास झाला असता का? झाला असता. पण त्यामुळे नक्की काय काय त्रास होऊ शकतो हे मला माहिती आहे किंवा ते माहीत करून घेणे तसे सोपे आहे. पण हर्षू समलिंगी असणे याबाबतीत मात्र ते अंमळ अवघड आहे. मुळात त्याचे समलैंगिक असणे म्हणजे काय हेच समजायला अवघड आहे. जसे एखाद्या पुरुषाला एखाद्या स्त्रीबद्दल शारीरिक आकर्षण वाटते, तसे त्याला एखाद्या पुरुषाबद्दल वाटते? पण असे असूच कसे शकते? म्हणजे जसे एखादा पुरुष एखाद्या स्त्रीबरोबर लैंगिक पातळीवर रत होतो तसे हर्षूला एखाद्या पुरुषाबरोबर रत व्हावेसे वाटते? पण मग हे तो नेमके कसे करेल? असे अनेक प्रश्न समोर उभे राहिले.

पण पडणारे प्रश्न फक्त याच म्हणजे जीवशास्त्रीय स्वरूपाचे नव्हते. माझ्या प्रश्नांना सांस्कृतिक, नैतिक असेही आशाम होते. हर्षू समलिंगी आहे हे आपण कुणाला सांगायचे की नाही? – हा पहिला प्रश्न होता. त्याचा बाप म्हणून मला याबाबत काही माहिती करून घेणे तर

.....

मनाचिये गुंती

आवश्यक होतेच. मग ज्याच्याकडून माहिती घ्यायची त्याला काय सांगायचे? मला माहिती अशीच आपली हवी आहे असे सांगायचे? आणि त्याने समजा विचारले, की कुणासाठी हवी आहे, तर काय उत्तर द्यायचे? हर्षूचे वय तर लग्नाचे झाले आहेच. तशी माझ्या मित्रांपैकी अनेकांच्या मुलामुलींची लग्ने झाली आहेत. तिथे विषय निघतोच- काय हर्षूचा लग्नाचा विचार आहे की नाही? इतके दिवस मी हसत हसत सांगून टाकायचो, की त्याबद्दल तोच काय ते सांगेल. वाटल्यास तुम्ही त्यालाच विचारा आणि कोणी त्याला विचारले तर तोही म्हणायचा- काय घाई आहे तुम्हाला? मी सुखात जगतो आहे ते तुम्हाला पाहवत नाही का?

नवीन परिस्थितीमध्ये हेच प्रश्न, पण वेगळे अर्थ घेऊन उभे ठाकले आहेत. सामान्यतः लग्न या घटनेचा एक पैलू म्हणजे आपली लैंगिक गरज भागवण्याचा सर्वसंमत मार्ग. पण मग हर्षूची लैंगिक गरज भागवण्याचा सर्वसंमत मार्ग कोणता? सर्वसंमत मार्ग वगैरे सोडा, पण मुळातच त्याने त्याची लैंगिक गरज कशी भागवावी? स्त्री-पुरुष संबंधांचे टोकाचे नियमन असलेल्या वातावरणातच माझेही आयुष्य गेलेले असल्याने, लैंगिक प्रेरणेच्या दमनाचे परिणाम मला चांगलेच माहिती आहेत. समलिंगी व्यक्ती त्याची किंवा तिची लैंगिक गरज कशी भागवणार? अशा विषयांवरील काही लिहून आले, की मी ते लक्षपूर्वक वाचू लागलो. जेव्हा संधी मिळेल तेव्हा हर्षूबरोबर बोलू लागलो. अर्थात अशी संधी फार वेळा मिळायची असे नाही.

हर्षूचे सध्या व्यवस्थित चालले आहे. त्याने आता आमच्याच व्यवसायामध्ये सहभागी होण्याचा निर्णय घेतला आहे. त्याच्या या निर्णयामुळे मी आणि मुलू दोघेही सुखावलो आहोत. हर्षू कामामध्ये आस्ते आस्ते रुळायला लागला आहे.

दरम्यान काही तज्ज्ञ लोकांशी याबद्दल बोलणे झाले, पण ठोस

अशी माहिती मिळू शकली नाही. खरेतर याबद्दल खूप सारी माहिती उपलब्ध असणार आहे. इंटरनेट किंवा पुस्तके यातून खूप माहिती मिळू शकेल असे वाटते. माझेच प्रयत्न कमी पडत आहेत असे म्हटले पाहिजे. पण माहिती मिळून तरी वेगळे काय घडणार? भिन्नलिंगी हे भिन्नलिंगी का असतात? म्हणजे स्त्री ही स्त्री का असते किंवा पुरुष हा पुरुष का असतो? या प्रश्नाचे उत्तर काय? ते तसे असते.- याखेरीज दुसरे उत्तर काय देणार? हा, आता 'क्रोमोझोम्स'च्या सिद्धांताच्या परिभाषेत 'XX' आणि 'XY' वगैरे तपशिलाच्या साहाय्याने हे अधिक स्पष्ट करता येईल. पण ते मुळात तसे का असावे याला उत्तर काय? मुळात दोन लिंगे का? आपण सारे एकलिंगी का नाही? किंवा दोनच लिंगे का? चार का नाही? भिन्नलिंगी व्यक्ती विरुद्ध लिंगाच्या व्यक्तीकडे आकर्षित का होतात? लैंगिक आकर्षणाची परिणती समागमात का व्हावी? समागमातून गर्भधारणा का होते? गर्भ स्त्रीलाच का रहावा? पुरुषाला का नाही? किंवा ते 'आँप्शनल' का नाही? या प्रश्नांना उत्तर नाही. असलेच तर ती निसर्गाची (किंवा ईश्वराची) करणी आहे एवढेच.

'चॅटिंग'च्या माध्यमातून एका समलिंगी तरुणाचा आणि हर्षूचा परिचय झाला. तो सध्या परदेशी असतो. तो एकदा आमच्याकडे आला होता. त्याला भेटून आणि त्याच्याशी बोलून मला खूप बरे वाटले. खूपच हुशार आणि सुस्वभावी असा वाटला. माझ्याशी खूप छान बोलला. मी त्याला माझ्या व्यक्तिगत संग्रहातली दोन पुस्तके भेट दिली.

मला असे वाटते, की अशा मुलांची एकमेकांशी वारंवार भेट व्हायला हवी. त्यांच्या पालकांनाही एकमेकांना वरचेवर भेटता यावे. आपल्या मुलांचे जीवन सुखी आणि सुरक्षित करण्यासाठी आपल्याला काय करता येईल यावर विचारविनिमय करता यायला हवा. समलिंगी मुलाच्या आईवडिलांना भेटण्याचा योग मला आजवर एकदाही आलेला

.....

मनाचिये गुंती

नाही.

पण, हर्षू नवकी समलैंगिक आहे याची काही शास्त्रीय पद्धतीने खात्री करून घेता यावी असे वाटते. मी हर्षूला एकदा असे म्हणालो तेव्हा एखाद्या अज्ञानी, अशिक्षित माणसाकडे बघावे तसे त्याने माझ्याकडे बघितले आणि म्हणाला, “बाबा, अशा गोष्टींची खात्रीबित्री कशी करणार? तुम्ही भिन्नलैंगिक आहात याची खात्री करता येईल का?” यावर मी काहीच बोलू शकलो नाही. कारण मलातरी कुठे माहिती आहे अशी खात्री करणे शक्य आहे की नाही ते?

विषय सोपा नाही.

हर्षू बुद्धिमान आहे. उच्चशिक्षित आहे. आमची आर्थिक परिस्थितीही चांगली आहे. तसे त्याला आयुष्यभर काहीही कमी पडणार नाही याची मला खात्री आहे. भिन्नलिंगी लोक तरी काय कायमचे सुखी होतात? ‘शादी वह लङ्घू है, जो खाये वह तो पछताये, और ना खाये वह भी पछताये।’ असे म्हणतात ते काही उगाचच नाही. शेवटी आयुष्याचा क्रूस हा ज्याचा त्यालाच वाहणे भाग असते. त्याला समलिंगी जोडीदार मिळणे— हे या प्रश्नाचे उत्तर आहे असे मला वाटते. जे निकष एखाद्या भिन्नलिंगी व्यक्तीला जोडीदार शोधताना लागू होतात, तेच समलिंगी व्यक्तीच्या बाबतीत लागू होतात. त्यांच्यासाठीही जोडीदार सूचक मंडळे निघायला हवीत. त्यांच्यातही आज एकी तर उद्या बेकी असे होऊ शकेल. त्यांच्यातही ‘लिव्ह-इन-रिलेशनशिप’ची संकल्पना असू शकेल. सर्वकाही शक्य होऊ शकेल. आम्हा आईवडिलांनी त्यांच्याबरोबर खंबीरपणे उभे राहिले पाहिजे. त्यांना हवे ते स्वातंत्र्य, हव्या त्या सोयीसवलती विनाशर्त दिल्या पाहिजेत.

हर्षूने मला काही दिवसांपूर्वीच सांगितले, की त्याच्या काही गोष्टी आम्हाला (म्हणजे मी व सुलू) तत्त्वतः मान्य कराव्या लागतील. त्याचा

जोडीदार पुरुष असेल हे तर गृहीतच आहे, पण तो कोण असावा, कसा असावा हे तो ठरवेल - आम्ही नाही - हे मला त्याने स्पष्ट सांगितलेले आहे आणि मी ते मान्यही केलेले आहे. त्याने मला असेही सांगितलेले आहे, की त्याला या बाबतीत कदाचित काही 'एक्स्परिमेंटेशन' करावे लागेल. पण ते तो आपल्या घरीच करेल, त्यासाठी तो बाहेर जाणार नाही. याला मी पूर्ण संमती दिलेली आहे.

हर्षू आणि आम्ही दोघे - त्याचे आईबाप, आमच्यासाठी हे सगळे म्हणजे एखादे अज्ञात विश्व धुंडाळण्यासारखे आहे. मी घट्ट मनाने पाय रोवून उभा राहिलेलो आहे; पण सुलू मात्र यामुळे खूप व्यथित झाली आहे. ती बाहेर जाणवू देत नाही पण मला माहिती आहे ती आतल्या आत उन्मळून पडली आहे. तिचा हर्षूवर अर्थातच फार जीव आहे. तिने तो जन्मल्यावर त्याचे अंग, हात, पाय, बोटे चाचपून सगळे जागच्या जागी आहे ना असे बघितले होते. आपला मुलगा असा असावा, असा नसावा, त्याने अमुक करावे, तमुक करू नये अशा तिच्या मनात खूप सान्या गोष्टी आहेत. हर्षूनेही तिला कधीही नाउमेद केले नाही. त्याने कॉन्वैंट स्कूलमध्ये प्रवेश मिळवून दाखवला. संगीत आत्मसात केले. इतकी खडतर स्पर्धा असलेल्या आयआयटीमध्ये प्रवेश मिळवून त्याने आम्हाला अपरिमित आनंद दिला. पण खोटे का बोलू, मी जरी कितीही म्हटले, की मी घट्ट पाय रोवून उभा आहे, तरी माझे इतके गुणाचे पोर सुखी होईल ना - ही चिंता माझेही काळीज कुरतडत असते. पण या सगळ्या प्रकारात एक गोष्ट दिलासा देणारी आहे. ती म्हणजे हर्षूने ही गोष्ट पूर्ण ताकदीने पेलली आहे. आपण समलिंगी आहोत या जाणिवेने इतर पोरांचे काय होत असेल हे मला माहिती नाही, (कारण मला असे कोणी माहीतच नाही. वर उल्लेखलेल्या हर्षूच्या मित्राचा एकमेव अपवाद वगळता.) पण हर्षूने ही वस्तुस्थिती पूर्णपणे स्वीकारली आहे.

त्याचे आयुष्य तो उत्तम प्रकारे घडवतो आहे, त्याच्या स्वतःच्या अशा काही महत्त्वाकांक्षा आहेत आणि मला आश्चर्य वाटते, की त्याच्या जिवलग अशा काही मैत्रिणीही आहेत.

असे म्हणतात, की डावखुरे लोक जात्याच वेगळे असतात-चांगल्या अर्थाने. त्यांचे हस्ताक्षर सुरेख असते. ते कला आणि क्रीडा या क्षेत्रात आपला वेगळाच ठसा उमटवतात. तसेच हर्षू आणि त्याच्यासारखे समलिंगी लोकही त्यांच्या अंगी विशेष काही बाळगून असणार. ‘हे विशेष काही’ एखाद्या वरदानासारखे त्यांना आयुष्यात सदैव साथ देईल अशी माझी अटकळ आहे. मात्र या समलिंगी असण्याबद्दल असलेल्या अज्ञानाचे आणि गैरसमजांचे निराकरण व्हायला हवे. एकूण लोकसंख्येत त्यांचे प्रमाण अल्प आहे, हे जाणून त्यांच्यासाठी आवश्यक ते सर्व काही केले जावे. भले अग्रक्रमाने ना सही, पण त्याकडे काणाडोळा होता कामा नये. त्यांच्याबाबतीत कोणत्याही प्रकारचा भेदभाव करणे म्हणजे समता आणि नैसर्गिक न्याय या मूलभूत तत्त्वांचे उल्लंघन होईल. असे करणे म्हणजे माणुसकीला काळिमा फासण्यासारखे आहे, हे विसरता कामा नये.

\*\*\*

### ३. श्रीमती कांचन कराणी (नितीनची आई)

माझा जन्म मुंबईत झाला. लहानपणी मी, माझे आईवडील व तीन मोठे भाऊ असे आम्ही एकत्र राहात असू. घरचं वातावरण सर्वसाधारण होतं. घरचे धार्मिक होते पण इतके नाही, की दिवसभर तेच करायचं. मी मुलगी म्हणून माझ्यावर कोणती विशेष बंधनं नव्हती. शिक्षण, नोकरी करायला मला कोणी अडवलं नाही. असं असलं तरी माझ्या घरात लैंगिकतेच्या विषयाबद्दल कधी संवाद होत नसे.

सर्वांत थोरला भाऊ मोठा झाल्यावर, नोकरीसाठी बाहेरदेशी गेला व काही काळानी बाकीचे भाऊही गेले. मग शेवटी घर सांभाळणारे फक्त वडील होते. त्यांच्या पगारात सर्वांचं भागत नसे. मला शिकायची फारशी आवड नव्हती. एस.एस.सी. झाल्यावर वडील म्हणाले, “तुला शिकायचं असेल तर माझी तुला शिकवायची तयारी आहे.” पण माझीच इच्छा नसल्यामुळे मी एम्प्लॉयमेंट एक्स्चेंजला अर्ज केला. त्याच्यामार्फत मला एका फॅक्टरीत नोकरी मिळाली. त्यानंतर मी ‘टेलिफोन एक्स्चेंज’मध्ये कामाला लागले. तिथे मी अंदाजे दोन-अडीच वर्ष काम केलं.

यानंतर माझ्या घरचे माझ्यासाठी स्थळ शोधू लागले. त्या काळात, लग्न कधी करायचं, कोणाबरोबर करायचं, असले प्रश्न विचारले जात नसत. मी २१ वर्षांची झाल्यावर माझं लग्न ठरलं. तो प्रेमविवाह नव्हता. मला पसंत करून सासच्यांनी या विवाहाला होकार दिला. त्या वेळी माझ्या सासरच्यांनी अट घातली, की लग्न झाल्यावर मी नोकरी सोडायची. हे मला मान्य होतं, की नव्हतं हे सांगणं अवघड आहे. कारण त्या काळात मुलींच्या विचारांची दखल घेतली जात नसे. त्यामुळे जे सांगितलं जाईल तसं वागायचं, ही शिकवण अंगवळणी पडली होती.

माझ्या सासरचे मुंबईचेच होते. लग्न झाल्यावर इतरांना जसा वेळ लागतो तसाच मलाही सासरी 'अँडजस्ट' व्हायला थोडा वेळ लागला. पण मग बन्यापैकी अँडजस्ट झाले. माझ्या सासरच्यांचं आणि माझं फारसं जमायचं नाही, म्हणून हे मला दर रविवारी बाहेर घेऊन जायचे. नितीन झाल्यावरही हाच क्रम चालू राहिला. तो सहा महिन्यांचा झाल्यापासून दर रविवारी मी आणि हे, नितीनला घेऊन बाहेर जायचो. आम्ही दोघंही नितीनवर खूप जीव लावायचो. त्याचे आजी-आजोबाही त्याचे खूप लाड करायचे. लहानपणापासूनच तो खूप हट्टी स्वभावाचा. एखाद्या गोष्टीचा हट्टधरला, की ती मिळवल्याशिवाय सोडायचा नाही. जमिनीवर गडाबडा लोळायचा, रडायचा, पण त्याचा हट्ट सोडायचा नाही. हा त्याचा हट्टीपणा माझ्या चांगला ध्यानात आहे. दुसरी एक गोष्ट, तो कधी फार बोलायचा नाही. आजही तो फारसा बोलत नाही. त्याच्याशी बोलायला गेलं तर त्याला राग येतो. “गप्प बस, मला काम करू दे” असं म्हणतो.

नितीननी मोठा झाल्यावर काय शिकायचं, कोणत्या विषयात प्रावीण्य मिळवायचं, कोणती दिशा धरायची, याबद्दल मी कधी विचार केला नाही. त्याला जे करावंसं वाटलं ते त्याला आम्ही करू द्यायचो. त्याच्या म्हणण्याला आम्ही सहसा विरोध नाही करायचो. त्याच्या वडिलांची इच्छा होती, की त्याने त्यांच्या बिझनेसमध्ये लक्ष घालावं. ४-५ वर्ष त्याने वडिलांबरोबर बिझनेस केलाही, पण मग एक दिवस म्हणाला, “मला बिझनेस नाही करायचा, मला जर्नालिझम करायचंय.” करायचंय असंपण नाही, “मी जर्नालिझम करतोय.” या निर्णयाचा मला व त्याच्या वडिलांना त्रास झाला, पण त्याला मारूनमुटकून तर बिझनेस करायला भाग पाढू शकत नव्हतो व तशी बळजबरी करायची इच्छाही नव्हती.

तो वडिलांबरोबर बिझनेस करत होता तेव्हाच त्याचं लग्न लावायचा

विचार माझ्या मनात आला होता. त्याच्याशी आम्ही ही गोष्ट बोललो नव्हतो, पण माझे आणि त्याच्या वडिलांचे हे बोलणे व्हायचे. नातेवाइकांत कोणती मुलगी त्याच्यासाठी चांगली आहे, ‘ही चांगली आहे....ती याच्यासाठी चांगली आहे’ असे बोलायचो.

१९९४ला आम्ही घर बदलून नवीन जागेत राहायला आलो. इथे आल्यावर सहा महिन्यानंतरची गोष्ट असेल, नितीनचं कपाट आवरताना मला काही मासिकं दिसली- ‘त्रिकोण’, ‘बॉम्बे दोस्त’. मी ती सहज उघडून बघितली. त्यातील फोटो पाहिले व सहज एक मासिक वाचायला लागले, तेव्हा मला वाटले, की हे काहीतरी वेगळे आहे. प्रश्न पडला, की, ही मासिकं त्याच्या कपाटात काय करतायत? तोपर्यंत मला त्याच्याबद्दल काही माहीत नव्हतं. ही पुस्तकं माझ्या हाती लागली तेव्हा मला यातील काही कळत नव्हतं. पण काहीतरी वेगळं आहे हे जाणून मी गोंधळले व घाबरले, की हा काय प्रकार आहे? तो या विषयावर आमच्याशी कधीच बोलला नव्हता.

मी यांना सांगितलं, की नितीनच्या कपाटात अशी (त्यांना ही गोष्ट सांगायला मी कोणते शब्द वापरले हे मला खरंच आठवत नाही.) मासिकं पाहिली आहेत. यांनी मासिकं बघायला नाही मागितली. सरळ विषयाकडे दुर्लक्ष केलं. “सगळं ठीक होईल. काळजी करू नकोस” असं म्हणाले. पण मी बेचैन होते. यांची ही प्रतिक्रिया बघितल्यावर, मी परत यांच्यापाशी हा विषय काढला नाही.

मग मी नितीनशी बोलले, त्याला विचारलं, “ही मासिकं तुझ्या कपाटात काय करतायत?” तो म्हणाला, “तुला काय वाटतंय, की ही मासिकं माझ्या कपाटात काय करतायत?” मला काय उत्तर द्यावं हेच कळेना. मग तो म्हणाला, “कारण मी ‘गे’ आहे.” तरी मला त्याचा अर्थ कळत नव्हता. ‘मी ‘गे’ आहे’, म्हणजे काय आहे? त्याचा अर्थ

काय? त्या वाक्यात त्याच्या आयुष्यातल्या कोणकोणत्या गोष्टी अंतर्भूत आहेत, याची तेब्हा अजिबात समज आली नाही. आता नितीन मला विचारतो, “तुला कसं नाही समजलं? तू माझ्याबरोबर बसून इतक्या वेळा ‘डायनॅस्टी’ सारख्या इंग्रजी सिरीयल पाहिल्या आहेत, ज्यात ‘गे’ पात्र आहेत. मग, ‘मी गे आहे’ हे सांगितल्यावर तुला याचा अर्थ कळला कसा नाही?” मला वाटते, की इंग्रजी मालिकेमध्ये एखादे ‘गे’ पात्र असणे व त्यावरून आपला मुलगा ‘गे’ आहे हे जाणणे यात खूप फरक आहे. माझ्यासमोर सर्व मांझूनही मला ते उमजत नव्हतं. त्याला वाटलं, की त्यानी ‘मी गे आहे’ हे सांगितलं म्हणजे मला सर्व समजलं, पण तसं नव्हतं. मी पूर्ण गोंधळलेल्या अवस्थेत होते.

त्याच्याशी बोलल्यावर मी अजूनच अस्वस्थ झाले. कोणाशी बोलायचं हेच कळेना. शेवटी मी यांच्या भावाच्या मुलीला व तिच्या नवच्याला फोनवर सांगितले व त्यांना म्हणाले, “मला हे काही समजत नाही, तर जरा घरी याल का?” माझा पूर्ण विश्वास होता, की हे घरचे आहेत, ते बाहेर याबद्दल कुठे बोलणार नाहीत. ते घरी आले. त्यांना मी हे सर्व सांगितले. त्या दोघांनाही धक्का बसला. ‘गे’ म्हणजे काय या अशा गोष्टी त्यांना माहीत होत्या. त्यांनी मला सांगितले, “काहीजण असे असतात, इट इज ओके.” असं म्हणून त्यांनी मला समजावलं. मला जर माझ्या नातेवाइकांनी आधार दिला नसता तर मला आणखीनच त्रास झाला असता. हे आमचं बोलणं चालू असताना नितीन आला. मग त्याचं त्यांच्याशी या विषयावर बोलणं झालं. मला त्यांच्या बोलण्यातल्या काही गोष्टी कळत नव्हत्या; पण इतकं कळू लागलं होतं, की काही पुरुषांचं स्त्रियांबरोबर जमत नाही, पुरुषांबरोबर जमतं.

कालांतराने मला हा विषय समजावा म्हणून नितीन मला ‘बॉम्बे दोस्त’ मासिक वाचायला देऊ लागला, ते मी वाचायचे. अधूनमधून तो

मला कोणाकोणाबदल सांगायचा. एकदा म्हणाला, “बघ आई, त्याचं असं आहे.....”

एकदा म्हणाला, “‘गे बॉम्बेची ‘गे’ मुलांच्या पालकांची मीटिंग आहे. यायचं असेल तर सांग. मी घेऊन जाईन. तुला हा विषय समजून घ्यायचा असेल तर मदत होईल”. मी त्या मीटिंगला गेले. तिथे २०-२५ ‘गे’ मुलं होती व माझ्यासारखे ५-६ पालक होते. त्यात एक ‘गे’ जोडपंही आलं होतं. ते जोडपं एकत्र राहात होतं. सगळ्यांना ते ‘गे’ जोडपं आहे हे माहीत होतं. ते लग्नसमारंभातही एकत्र जात होते. हे सर्व मला नवीन होतं. अशी जोडपी असतात हे मला तेव्हा प्रथम बघायला मिळालं. काही महिन्यांनंतर अशीच एक मीटिंग आमच्या घरीही झाली.

मला हळूहळू कळायला लागलं, की नितीन ‘गे’ अॅकिटव्हिझममध्ये आहे. मला काळजी वाढू लागली. लोक काय म्हणतील? लग्न समारंभात, पार्टीत लोक म्हणायचे, की याचं लग्न लावा. त्यांना काय उत्तर द्यायचं? मी म्हणायचे, की तो नाही तयार होत. मग एकदा त्यानेच सगळ्यांना सांगितलं व सगळ्यांचं बोलणं बंद झालं.

सुरुवातीला हा ‘गे’ अॅकिटव्हिझममध्ये आहे हे आम्हाला माहीत नव्हतं. मुंबईत जेव्हा हमसफर ट्रस्टने पहिली ‘गे कॉन्फरन्स’ भरवली तेव्हा याने सांगितलं, की तो मित्रांबरोबर महाबळेश्वरला जातोय. मला वाटलं, की हा खरंच मित्रांबरोबर सुट्टीवर गेलाय. नंतर मला कळलं, की हा त्या कॉन्फरन्सला गेला होता.

या विषयावरून माझं आणि त्याचं अनेकवेळा बोलणं झालं, पण वादावादी कधी झाली नाही. थोडी झाली ती, तो व त्याच्या वडिलांमध्ये. त्याचे वडील म्हणाले, ‘हे असं नसतं, हे बरोबर नाही’ वगैरे वगैरे. मला मध्ये मध्ये म्हणायचे, “त्याला लग्नाला राजी कर. सर्व ठीक होईल, देवावर भरवसा ठेव.” मला माहीत होतं, की हा बदलणार नाही.

मी काही कोणा मानसोपचारतज्जाकडे गेले नाही.

आता मोठी काळजी पडली ती याचं पुढे कसं होणार? म्हणून ज्योतिष्याकडे जाऊ लागले. कोणी एखाद्या ज्योतिष्याबद्दल सांगितलं, की त्याच्याकडे मी जायचे. एका ज्योतिष्यानं सांगितलं, “त्याचं लग्न तो ३० वर्षांचा झाल्यानंतर होईल.” मला बरं वाटलं. कुठेतरी आशा होती, की या तारखेनंतर सर्व ठीक होईल. पण तसं काही झालं नाही. मग कालांतराने मी दुसऱ्या ज्योतिष्याकडे गेले. तिने त्याची कुंडली बघितल्याबरोबर सांगितलं, “हा मुलीसारखा आहे.” हा वेगळा आहे, हे तिला कसं काय कळालं हे मला खरंच माहीत नाही. कारण मी तिला अजिबात याच्याबद्दल काही सांगितलं नव्हतं.

सुरुवातीला मला वाटायचं, की तो ‘गे’ आहे म्हणजे तो नपुंसक असेल किंवा त्याच्यात काही कमतरता असेल, ज्याच्यामुळे त्याला मुलीसोबत संबंध करता येणार नाहीत. पण तसं नव्हतं. त्याच्यात काही कमतरता नव्हती. पण मग त्याने स्त्रीबरोबर संसार का करू नये? तो मला सांगायचा आणि अजूनही सांगतो, की माझ्यात काहीही कमतरता नाही. मला मुलींबद्दल मानसिक व शारीरिक ओढच नाही. मुलांबद्दल ओढ आहे. मग मी पुरुषाबरोबरच संसार करणार ना? आजही मला हे नीटसं कळत नाही, कारण जर काही कमतरता नाही तर मग त्याने स्त्रीबरोबर संसार का करू नये?

हळूहळू माझ्या लक्षात येऊ लागलं, की तो स्त्रीशी कधीही लग्न करणार नाही. चारचौघांसारखा त्याचा संसार होणार नाही. त्याला मुलं होणार नाहीत. मी आजी बनणार नाही याचं मला दुःख झालं, पण हळूहळू मी या नव्या परिस्थितीला स्वीकारू लागले.

कालांतराने त्याचा एक मित्र घरी येऊ लागला. नितीननी सुरुवातीला ‘माझा मित्र’ म्हणून त्याच्याशी ओळख करून दिली. पण

हळूहळू माझ्या लक्षात येऊ लागलं, की हा नितीनचा फक्त मित्र नाही; तो नितीनचा बॉयफ्रेंड आहे. तो त्याच्या बेडरूममध्ये झोपायचा. मी नितीनला सांगू लागले, की मला हे सर्व पसंत नाही. तू त्याला घरी नको आणत जाऊस. बाहेर तुम्ही काहीपण करा, पण घरात नको. पण नितीन हव्ही. माझं अजिबात ऐकायचा नाही.

एका वर्षानिंतर त्यांचं नातं तुटलं. कालांतराने त्याला अजून एक बॉयफ्रेंड मिळाला, पण तेही नातं टिकलं नाही. तेव्हा नितीनला त्याचा खूप त्रास झाला. नैराश्य आलं. त्यांच्या नात्याबद्दल मी नितीनशी कधी बोलले नाही. कारण खरं सांगायचं तर त्याचं नातं तुटल्याचं मला बरं वाटलं होतं. त्याचा बॉयफ्रेंड आता घरी येणार नाही हे कळल्यावर मला हायसं वाटलं.

आता गेली तीन वर्ष तो एका नव्या बॉयफ्रेंडबरोबर राहतो आहे. मला त्याच्या बॉयफ्रेंडनी घरी येणं मंजूर नाही आणि त्याला त्याच्या बॉयफ्रेंडबरोबर राहायचंय म्हणून त्यानी हे घर सोडून वेगळं राहायचा निर्णय घेतला. याचा मला खूप त्रास झाला. एकुलता एक मुलगा, त्यानं आईवडिलांबरोबर नको का राहायला? मला त्याच्या या निर्णयाचं खूप दुःख झालं. मी दोन महिने त्याच्याशी अगदी जेमतेम बोलायची. तो 'गे' नसता आणि त्याची बायको असती तरी मला त्यांनी वेगळं राहणं आवडलं नसतं. पण त्याचा बॉयफ्रेंड आहे आणि त्यात त्याच्या आणि त्याच्या बॉयफ्रेंडमध्ये वयाचं खूप अंतर आहे (नितीनपेक्षा तो वयाने लहान आहे.) याच्यामुळे या दुःखात अजून भर पडली. त्याच्या बॉयफ्रेंडनी या घरात राहणं मला मंजूर नव्हतं आणि माझ्या मुलाने घर सोडून जाणंही मला मंजूर नव्हतं. पण मग त्यातल्यात्यात वेळ आलीच तर नितीननी त्याच्या बॉयफ्रेंडबरोबर वेगळं राहावं, ही माझी इच्छा होती. नितीन म्हणतो, की 'आईला आपला मुलगा आपल्यापाशीच हवा

असतो, म्हणून सासू-सुनेत कायम भांडणं होतात.’

यांचं आत्ताचं नातं बघितलं, की मनात येतं, की हे नातंतरी टिकणार का? हेही नातं टिकलं नाहीतर काय होणार? मागचं नातं टिकलं नाही तेव्हा त्याला खूप नैराश्य आलं होतं. असं झालं, की त्याला होणारा त्रास मंला बघवत नाही. काळजी वाटते. हे असंच होत राहणार का? तसं झालं तर त्याच्या आयुष्यात त्याच्या वाट्याला काय सुख येणार? पण मग असंही वाटतं, की हे जे त्यांचं आत्ताचं नातं आहे, त्या नात्याला जवळजवळ तीन वर्ष होत आली आहेत. ते ‘सेटल’ झालेत. हे नातं टिकलं तर त्याला सुख मिळेल. मला काळजी करायचं काही कारण नाही. मग परत वाटतं, की यांच्यामधलं वयाचं अंतर बघता हे नातं टिकेल का? मग परत वाटतं, की आहे हे सर्व नैसर्गिक आहे, तर मग जे वाट्याला येईल ते स्वीकारलं पाहिजे. हा आपला मुलगा आहे, त्याला आपण आधार दिला पाहिजे; मग काहीही होऊ दे. कितीही अवघड असलं तरी आईवडिलांनी आपल्या मुलाला/मुलीला स्वीकारायचा प्रयत्न केला पाहिजे. नितीन मला विचारतो, “मी एकुलता एक नसतो तर मंला स्वीकारलं असतंस का?” “नक्की.” मी असं अजिबात म्हणत नाही, की नितीन माझा एकुलता एक मुलगा आहे, म्हणून मी त्याला स्वीकारलं. जरी मला अजून एक-दोन मुलं असती तरी मी नितीनचा स्वीकार केला असता. कारण एक काय किंवा दोन-द्यांनी काय सर्व मुलं जर आपलीच असतील तर त्यांच्यात भेदभाव कसा करणार?

\*\*\*\*\*

## ४. श्रीमती मीरा (नेहाची आई)

सन २००९. एम.बी.ए.ची डिग्री मिळवण्यासाठी माझी मुलगी यू.के.ला गेली होती. सुरुवातीची अँडजस्टमेंट संपून ती बन्यापैकी तेथील वातावरणात रुळते आहे, तसेच अभ्यासातही रमली आहे, असं वाटत होतं आणि इथे मी व तिचे वडील तिचं लग्न ठरवण्याचे मनसुबे रचत होतो.

आमच्याच मित्राचा मुलगा. अत्यंत सुविद्य, सुस्वभावी आणि माहितीतलाच मुलगा होता, नावे ठेवायला जरासुद्धा जागा नव्हती त्या स्थळामध्ये. या साच्या घडामोडींची माहिती मी मुलीला फोनवरून देत असे. परंतु तेथून अगदीच थंड प्रतिक्रिया येत होती. मला उगाच टेन्शन येई, परंतु ‘कोणती मुलगी स्वतःच्याच लग्नाबदल मोकळेपणाने बोलेल?’ असे म्हणून माझे पती माझे म्हणणे नेहमीप्रमाणे खोडून काढीत असत.

जेव्हा मी मुलीला फोनवर सांगितले, की तिची जन्मपत्रिका जुळवण्यासाठी आमचे मित्र उद्या जाणार आहेत तेव्हा कावरीबावरी होऊन ती फोनवर रळू लागली. तिचे हुंदके व माझे वाढलेले हृदयाचे ठोके यांचा कुठेच मेळ जमेना. मन एकदम सुन्न झाले. फोनवर बोलताना खूप जवळ वाटणाऱ्या आम्हा दोघीमध्ये खूप खूप अंतर आहे हे पटकन जाणवले.

१५-२० सेकंदांनंतर आमचे संभाषण पुन्हा सुरु झाले.

“तुझ्या मनात दुसरी व्यक्ती आहे का? तुला इतक्यात लग्न नको आहे का? तू मुळीच काळजी करू नकोस, उदास होऊ नकोस, हा तुझ्या संपूर्ण आयुष्याचा प्रश्न आहे, आम्ही कसलीही जबरदस्ती करणार नाही.” असे आश्वासन मी देत होते खरी, परंतु ती आमच्यापासून फार दूर आहे हे क्षणोक्षणी मला जाणवत होते. ती हळूहळू शांत झाली. पण अजून दुसरा धमाका व्हायचा होता. मोठ्या शहरांमध्ये

आतंकवाद्यांकडून नाही का, लागोपाठ २-३ बॉम्बसफोट होतात. सगळेच भयंकर आणि तीव्र असतात, परंतु दुसऱ्या व तिसऱ्या स्फोटाची बातमी ऐकताना मन थोडेसे तयार होते. तसंच काहीसं वाटलं.

तिनं मला अगदी हळू आवाजात सांगितलं, “मला जे शारीरिक आकर्षण वाटतं ते फक्त मुलींबद्दल वाटतं, मुलांबद्दल कसलंही शारीरिक आकर्षण वाटत नाही. अशा मुलींना ‘लेस्बियन’ असं म्हणतात, त्या कॅट्गरीमध्ये मी बसते. हे तुला व बाबांना फार भयंकर वाटेल, पण मी तरी काय करू?”

मी ३० वर्षांपूर्वी कॉलेजमध्ये मानसशास्त्र शिकताना ‘गे’ या शब्दाशी माझी ओळख झाली होती. परंतु ‘होमोसेक्शुअलिटी’वरील अगदीच थोडी माहिती व तीसुद्धा ‘अॅबनॉर्मल’ मानसिकतेच्या पुस्तकात दिली होती. ‘Character disorder’, ‘Behaviour disorder’ पैकी हे आहे, असाच माझा समज होता.

तिने पुढे सांगण्यास सुरुवात केली, “अशा व्यक्तींबद्दल या जगात संपूर्णपणे द्वेष भरलेला आहे. आम्हाला इतरांपासून वेगळे मानले जाते व आमचा उपहास, चेष्टा करण्यामध्ये ‘स्ट्रेट’ म्हणजे भिन्नलिंगी व्यक्ती कुठेही कमी पडत नाहीत: मी ज्या ‘फूड जॉईंट’वर नोकरी करते तिथे जो तो माझी चेष्टाच करतो व उघड उघड टर उडवतो. चुकून जर कोणी माझ्या कामाची प्रशंसा केली, तर माझ्यात ही उणीव आहे असे इतरजण मला व एकमेकांना पटवून देतात व हा टवाळीचा विषय बनतो. मी फार बेजार झाले आहे. मला जीव नकोसा झाला आहे, कशातच स्वारस्य वाटत नाही मला.”

आता मात्र माझ्या पायाखालची जमीन सरकू लागली होती व मला भोवळ येते आहे असे वाटू लागले.

पण लगेच खांदे उंचावले व पाठीचा कणा ताठ करून बसले आणि स्वतःला सावरायचा प्रयत्न केला. कारण आता तिला माझी व बाबांची जास्त गरज होती. मीच अशावेळी खचले व रडत बसले तर दूरवर

एकट्या असलेल्या व अतिशय दुखावलेल्या माझ्या बाळाला कोण सावरणार होते?

विजय मर्चट यांच्या मताप्रमाणे ‘बॉल कसाही येवो, आपण संपूर्ण शक्ती वापरून तो चांगल्या रितीनेच प्ले केला पाहिजे.’ खरंच ही शक्ती, आपल्या बदलत्या परिस्थितीत खूप काही करू शकते.

परंतु परमेश्वरानेच नेहमीप्रमाणे मला यावेळीही ताकद दिली व ताकीदही दिली आणि बजावले, की तिला सांग, ‘तू एकटी नाहीस, आम्ही सारे तुझ्याबरोबर आहोत. आपली फॅमिली हा एक त्रिकोण आहे (आई, बाबा, मुलगी). या त्रिकोणाचा एक जरी बिंदू नष्ट झाला, तर दोन भवकम बाजू, तसेच दोन हात नष्ट होतात. हे लक्षात घे, की आपण खरेच, सर्वच बाबतीत एकमेकांचे आहोत.’

मी तिला सांगितलं, “लेस्बियन, गे वगैरे शब्दांशी आमची ओळख नाही. आम्ही खरेच अनभिज्ञ आहोत. तेव्हा तू या विषयावरील माहिती जमकून आम्हाला पाठवण्याचा प्रयत्न कर. थोडे दिवस राहिले आहेत, त्यात स्वतःला सांभाळ. अभ्यासात मन गुंतवायचा प्रयत्न कर. म्युझिक ज्यात तुला गती आहे व रस आहे ते शिकून घे. आपल्याहूनही दुःखी लोक आजूबाजूला आहेत. त्यांना समजून घे. नोकरी करण्याची गरज नाही. सतत आमच्या संपर्कात राहा.” आम्ही तेथे जाण्याची तयारी दाखवली, परंतु ती बरीचशी शांत झाली व स्वतःस सांभाळण्याची तयारी तिने दाखवली.

मध्यंतरी मी टीव्हीवर ‘याला जीवन ऐसे नाव’ या कार्यक्रमात श्री. बिंदुमाधव खिरेसरांची रेणुका शहाणे यांनी घेतलेली मुलाखत पाहिली, त्याची माहिती तिला सांगितली. तिनेही ‘यू ट्यूब’वर ती पाहिली व तिचा दृष्टिकोन हळूहळू बदलू लागला.

ती भारतात परतल्यावर आम्ही बिंदुमाधव खिरेसरांची भेट घेतली. तेव्हा तिच्या व माझ्या मनात सतत घोंघावणारे प्रश्न बरेचसे निघून गेले आणि त्यांनीच लिहिलेले ‘इंद्रधनु’ हे पुस्तक जेव्हा वाचनात आले तेव्हा

मन हळूहळू शांत होऊ लागले.

संपूर्ण शास्त्रीय व सामाजिक दृष्टिकोनातून बरीचशी माहिती आम्हाला मिळाली. जगामध्ये जवळजवळ ५% व्यक्ती समलिंगी आहेत, असे समजले. हा एक 'प्रॉब्लेम' नसून आपल्याच जीवनाचा अविभाज्य घटक आहे, याची सत्यता अगदी मनापासून पटली.

यू.के.तील युनिव्हर्सिटीमधील काउन्सिलरने 'मेंटल हेल्थ अँडव्हायझर'च्या माध्यमातून तिला मार्गदर्शन केले व 'स्टोनवॉल' नावाच्या एका सपोर्ट इन्स्टिट्यूटची माहिती दिली. तिथेच राहून या संदर्भात 'सोशल वर्क' करण्याचा तिच्या मनाचा कल दिसत होता. परंतु अतिशय द्वेषाने भरलेल्या वातावरणापेक्षा आपल्या माणसांमध्ये परत येण्याचा निर्णय तिने घेतला.

हिला शिक्षणासाठी इंग्लंडला पाठवण्यात आमची फार मोठी चूक झाली असाच विचार सतत माझ्या डोक्यात येई.

इंग्लंडमध्ये समलिंगी नात्यांना कायद्याची मान्यता असूनही, लहानपणापासून तेथील मुलांच्या मनात इतका द्वेष आणि भीती निर्माण केली गेली आहे, की हा विषय फार चघळला जातो. माझी नणंद जी व्यवसायाने डॉक्टर असून इंग्लंडला स्थायिक आहे, तिच्या सर्कलमधील अनेक 'कालिफाइड डॉक्टर्स'सुद्धा या विषयावर ट्वाळखोर चर्चा करण्यात रंगतात असे ऐकून आहे.

बालपणी मित्रमैत्रिणींबरोबर उत्साहात बागडणारी, चांगला अभ्यास करून भरपूर मार्क्स मिळवणारी ही मुलगी वयात येताना, माझ्याशी किंवा बाबांबरोबर मोकळी का झाली नाही? असाही प्रश्न पडतो. कदाचित घरातील वडीलधान्या माणसांच्या धाकामुळे किंवा त्यांनी वर्चस्व गाजवल्यामुळे असेल. आम्हीही अज्ञानी अवस्थेत तिला समजून घेण्यास अपुरेच पडलो असू. तिथे जाण्यापूर्वी तिने 'गायनकॉलॉजिस्ट'कडून स्वतःच्या टेस्ट करून घेतल्या व 'मी पूर्णतः नॉर्मल आहे' असे तिने सांगितल्याचे मला आठवते. परंतु इंग्लंडला

मेडिकलचा खर्च फार भारी पडत असेल म्हणून हे सारे तिने इथेच केले असावे, असाच माझा समज झाला.

किशोरवयात मनात येणारी ही भावना व सगळे सल तिने एकटीनेच मनाच्या संभ्रमित अवस्थेत भोगले, ही टोचणी मनास अजूनही लागून राहिली आहे.

किशोरवयात येताना जे काही मानसिक व शारीरिक बदल मुला-मुलींमध्ये घडून येतात, तेव्हाच त्यांना जर लैंगिक शिक्षण संपूर्ण शास्त्रीय पद्धतीने, सोप्या भाषेत दिले गेले, तर समलिंगी मुलांबदलची विषमता राहणार नाही. त्यांना वेगळे लेखून चिडवणे, टवाळी करणे हे होणार नाही. खरेखुरे प्रेम, एकी, सहकार या भावना वाढीस लागतील.

तसेच वडीलधान्या व्यक्तींची मानसिकता बदलणे हेही फार गरजेचे आहे. परंतु पूर्णतः अशक्य वाटणारी ही गोष्ट हळूहळू साध्य होऊ लागेल अशी आशा वाटते आहे.

एका पुस्तकात माझ्या वाचनात आले आहे, की ‘दोन समलिंगी ‘पेंगिन’ नी, एका लहानाग्या ‘पेंगिन’चा प्रेमाने व आपलेपणाने सांभाळ केला.’ जर पशू, पक्षी, प्राणी एवढ्या उत्कटपणे वागू शकतात तर मग माणूस का नाही? फक्त लैंगिकता वेगळी असलेल्या मुलांकडून व माणसांकडून भलत्याच (त्यांना जे शक्य नाही त्या) अपेक्षा का कराव्यात?

तेव्हा आपण सारेच या आयुष्याचा निर्मळ, निरागस आनंद उपभोगण्याच्या वृत्तीचा अंगीकार करू असा आशावादी दृष्टिकोन ठेवूया.

समलिंगी लोकांना वैवाहिक बंधनं नसल्यामुळेच लैंगिक स्वैराचार पसरतो असा एक समज आहे. समलिंगी विवाहास मान्यता मिळाली, शारीरिक संभोगाबरोबर मनेही जुळली गेली तर समलिंगींमध्येच एकवाक्यता, एकजूट ही भावना वाढीस लागेल. आशा धरते, की ५% समलिंगी लोकांना ९५% भिन्नलिंगी लोकांनी मान्यता देणे ही आज

अशक्य वाटणारी बाब हळूहळू सहजसाध्य होईल. स्वतःची ताकद ओळखून, कौशल्य वापरून समोरच्या बहुसंख्य लोकांच्या ताकदीचा उपयोग कसा करून घ्यायचा व मान्यता, एकवाक्यता मिळवण्याचा कसा प्रयत्न करायचा हेच मोठे आव्हान आहे. समाजमनातील कुठलाही बदल एका रात्रीत घडलेला नाही. उदा., सतीची चाल बंद होणे, स्त्रीशिक्षण, विधवाविवाह वगैरे. कुठलंही कडू औषध एकदम घशाखाली उतरत नाही. त्यामुळे कोणताही आवश्यक बदल हा कायद्याच्या चौकटीत राहून हळूहळू होत गेला तर जास्त परिणामकारक होईल. समाजमनाची रुढी, गैरसमजांची बसलेली घडी एकदम न विस्कटता हळूहळू एक एक पदराने उलगडत गेली तर उलगडलेल्या गालिच्यावर प्रत्येक माणसास, स्वतःची एक जागा किंवा 'स्पेस' मिळू शकेल अशीच आशा करूया.

या संदर्भात कार्य करणाऱ्या कार्यकर्त्यांना आमचे अनेक सलाम व शुभेच्छा! या कार्यात आमचाही सहभाग असेल व त्यांचे मार्गदर्शन मिळेल अशी मनापासून इच्छा आहे.

\*\*\*\*\*

## ५. श्रीमती शीतल समुद्र-देशमुख (समीरची ताई)

मी आणि माझा मोठा भाऊ समीर मध्यमवर्गीय घरात वाढलो. आमची आर्थिक परिस्थिती तशी बेताचीच होती. पण घरात वातावरण तसे सुखी, समाधानी आणि आनंदी होते. आईबाबा दोघेही नोकरी करत असल्याने समीर माझी छान काळजी घ्यायचा. त्यामुळे आमच्यात नकळत मैत्रीचे घट्ट नाते निर्माण झाले.

घरात ब्राह्मणी संस्कार होत होते. गौरी-गणपती आणि इतर सर्व सण आम्ही साजरे करायचो, पण खूप धार्मिक वातावरण नव्हते. उलट आईबाबांशी मित्रत्वाचे संबंध होते. पण बाबा कडक असल्याने त्यांची शिस्त खूप होती. आईचे आणि आमचे मात्र अगदी मैत्रीचे नाते होते.

मी लहानाची मोठी होत असताना, ‘गोरी गोरी पान फुलासारखी छान, दादा मला एक वहिनी आण’ हे गाणे ऐकायचे, आजूबाजूला मैत्रिणींशी बोलताना किंवा इतर सर्व सामाजिक प्रभावामुळे वाटायचे, ‘समीर मोठा झाल्यावर त्याचे मुलीशी लग्न होणार’. आजूबाजूला काही बघितले नसल्याने किंवा ऐकले नसल्याने ‘गे’ म्हणजे काय याची पुसटशी कल्पनापण नव्हती.

माझे लग्न झाल्यावर काही महिन्यांनंतर त्याने मला तो ‘गे’ असल्याचे सांगितले. सर्वप्रथम खूप धक्का बसला. दोन मुले अथवा दोन मुली एकत्र कसे राहू शकतात याचे आश्चर्य वाटले. खूप वेगळे वाटले. त्या वेळेस मनात अनेक विचार आले, म्हणजे आपल्या भावाला फिजिकली काही प्रॉब्लेम आहे का? तो छक्का आहे का? यावर काही उपचार करता येतात का? त्या वेळेस त्याला मी, ‘हे तू आईबाबांना सांगू नकोस’ हे बजावले.

त्यानंतर मी हळूहळू या विषयावरची माहिती काढत गेले. इंटरनेटवर पण खूप माहिती वाचली. जगात असे अनेक लोक आहेत हे कळल्यावर खूप धीर आला. पण समीरची मात्र काळजी वाटायची.

मंगला आठलेकरांचे ‘हे दुःख कुण्या जन्माचे’ पुस्तक जास्त जवळचे वाटले. कारण मी ‘गे’ या विषयावर वाचत असलेले ते पहिले मराठी पुस्तक होते. ‘गे-बॉम्बे’ची वेबसाइट बघितली. समीरशी सतत बोलून, वेगवेगळ्या प्रकारे माहिती मिळवून, वाचून मला या विषयाबाबतीत खूप माहिती मिळाली. भारतात असेपर्यंत मला ‘गे’ मुले जास्त माहिती नव्हती. मात्र अमेरिकेत आल्यानंतर खूप ‘गे’ मुलामुलींच्या ओळखी झाल्या. मला असे वाटते, हे सर्व ‘अॅक्सेप्ट’ करायला खूप वेळ द्यावा लागतो. एका रात्रीत हे कधीच काही होत नाही. समीरवर असणारे प्रेम आणि त्याच्याबद्दल वाढत असणारा विश्वास या दोन गोष्टीमुळे मला त्याचे ‘गे’पण ‘अॅक्सेप्ट’ करायला सोपे गेले.

त्याचे ‘गे’पण अॅक्सेप्ट करण्यात माझे पती श्री. पराग देशमुख यांचापण मला खूप मोठा सहभाग मिळाला. त्यांनासुद्धा ‘गे’ म्हणजे काय हे माहीत नसल्याने समीरला त्यांना हे सर्व समजावून सांगावे लागले. त्याबाबतीत जाणकार झाल्यानंतर त्यांनी पूर्णपणे समीरला पार्टिबा दिला.

त्यांचा सपोर्ट माझ्यासाठी महत्वाचा होता. कारण त्यांनी जर मला सपोर्ट केला नसता तर मीपण समीरला पूर्णपणे १००% सपोर्ट करू शकले नसते. माझ्या पतीच्या म्हणण्याप्रमाणे, “समोरच्या माणसाकडे धर्म, जात, लिंग, लैंगिकता यांपैकी कुठल्याही गोष्टीवरून भेदभाव न करता ‘माणूस’ म्हणून बघणे गरजेचे आहे.” त्यांच्या अशा विचारांमुळे घरात पहिल्यापासून मोकळे वातावरण राहायला मदत झाली.

आज मागे वळून बघताना जाणवते, की मी अमेरिकेत आल्यानंतर याबाबतीत जास्त ‘कम्फर्टेबल’ झाले. भारतात असेपर्यंत जास्त ‘गे’ लोक बघितले नसल्याने व आजूबाजूला समाजात ‘रोल मॉडेल्स’ सगळे भिन्नलिंगी कलाचे असल्याने हे सगळे वेगळे वाटायचे. पण अमेरिकेत आल्यानंतर मात्र बन्याच ‘गे’ मुलामुलींच्या ओळखी झाल्या. एम.बी.ए. करत असताना जाणवले, की येथे कॉर्पोरेट जगतात

मोठमोठ्या कंपन्यांच्या पॉलिसीमध्ये 'डोमेस्टिक पार्टनर बेनिफिट्स' असतात. म्हणजे नवरा कंपनीत काम करत असेल तर बायकोला पार्टनर म्हणून जे 'इन्शुअरन्स बेनिफिट्स' मिळतात, तेच सगळे 'बेनिफिट्स' गे/लेस्बियन व्यक्तीच्या पार्टनरलापण मिळतात. माझ्या युनिवर्सिटीत 'गे' आणि 'स्ट्रेट अलायन्स'चा ग्रुप आहे. त्या ग्रुपच्या वेगवेगळ्या कार्यक्रमांमध्ये मी. आवर्जून सहभाग घेते. येथे होणाऱ्या 'गे' प्राइड परेडमध्ये बन्याच कंपनीज सहभाग घेतात. वॉशिंग्टन डी.सी. आणि इंडियानाऱ्या प्राइडमध्ये मी सहभागी झाले होते. आजूबाजूची खूप 'गे' मुलंमुली बघितल्याने, त्यांच्याशी मैत्री झाल्याने सुरुवातीला वाटणारे वेगळेपण आणि अवघडलेपण हळूहळू कमी झाले.

मला नेहमी काळजी वाटायची, की समाजाला हे मान्य नसल्याने समीर यात कसा तग धरून राहील? तो एकटा तर पडणार नाही ना? त्याला लोक नावे तर ठेवणार नाहीत ना? शिवाय उद्या तो एखाद्या मुलाबरोबर स्वतंत्र राहत असेल तर तो लोकांच्या चर्चेचा विषय ठरेल. पण भारतात असेपर्यंत हे सर्व प्रश्न जे मला छळायचे, त्या सर्वांना अमेरिकेत आल्यावर उत्तर मिळाले. अमेरिकेसारख्या 'स्वतंत्र' विचारसरणीच्या पुरस्कृत्या देशात जाणवले, की सदसद्विवेकबुद्धीने घेतलेला निर्णय चुकीचा असू शकत नाही. जगात प्रत्येक माणसाला आनंदी राहायचा अधिकार आहे. समाजाच्या दडपणाखाली न राहता, कोणालाही इजा न करता तुम्ही जर तुमचे आयुष्य तुमच्या निवडीप्रमाणे घालवत असाल तर त्याला कोणीही विरोध करणे चुकीचे आहे.

आज माझ्या जवळच्या मैत्रिणीबाबत झालेली घटना आठवते. लग्न झाल्यानंतर काही दिवसांतच तिचा घटस्फोट झाला आणि त्याचे कारण म्हणजे, समाजाच्या दडपणामुळे, आईवडिलांच्या जबरदस्तीमुळे त्या मुलाने लग्न केले. पण तो 'गे' असल्याने त्याला त्या मुलीत काहीच इंटरेस्ट नव्हता आणि त्याची परिणती घटस्फोटामध्ये झाली. नंतर माझ्या त्या मैत्रिणीला ज्या त्रासातून जावे लागले, तो मी माझ्या डोळ्यांनी

बघितला. अर्थात, जी 'गे' मुले/मुली लग्न करतात, त्या सर्वांना आपण दोषी ठरवणे चुकीचे आहे. कारण आपण, हा समाजच त्यांना तसे करायला भाग पाडतो आणि दुर्दैवाने प्रत्येकात प्रवाहाच्या विरुद्ध पोहायची ताकद नसते.

आज समीरने मला 'गे' असल्याचे सांगून आठ वर्ष होऊन गेली. आता मला कधीच भीती वाटत नाही, की आपल्या नातलगांना तो 'गे' असल्याचे कळल्यावर काय वाटेल, माझ्या मित्रमैत्रिणींना तो 'गे' असल्याचे कळल्यावर ते काय म्हणतील? या आठ वर्षांत खूप शिकले, खूप वाचले आणि खूप लोकांना भेटले. त्यामुळे माझ्या दृष्टीने 'गे', 'स्ट्रेट' असा काही भेदभाव राहिला नाही. जी मुलगी आठ वर्षांपूर्वी आपल्या भावाला म्हणाली होती, की तू 'गे' आहेस हे आईबाबांना सांगून कोस, तीच आज सगळ्या जगाला 'होमोसेक्शुअल' असणे कसे नैसर्गिक आहे हे सांगत असते. ते वेगळे आहे, पण विचित्र नाही. अर्थात माझा कधीच कोणाला आग्रह नसतो, की तुम्ही हे सारे लगेच मान्य करा. पण या गोष्टीचा तिरस्कार करण्याआधी किंवा याबद्दल काही वाईट बोलण्याआधी हे काय आहे, हे तरी समजून घ्या.

माझ्या आईबाबांनापण समीरचे 'गे' पण 'ऑक्सेप्ट' करायला वेळ लागला. बाबांनी त्याला कधीच 'तू लग्न कर' असे सांगितले नाही. तो 'गे' असल्याचे कळल्यावर, आई मात्र खूप भावनिक असल्याने, तिला हे जड गेले आणि अजूनही जड जाते. आईने त्याला वेगवेगळ्या मानसोपचारतज्जांकडेपण नेऊन आणले. ती धार्मिक आणि थोडी अंधश्रद्धाळू असल्याने त्याला बन्याच बुवा-बाबांकडे नेले. तिला वाटायचे, 'त्याच्यावर काही उपचार झाले, म्हणजे तो 'स्ट्रेट' होईल.' त्यामुळे आम्हाला सतत तिला या लैंगिकतेचा शास्त्रीय दृष्टिकोन आणि हे सर्व कसे नैसर्गिक आहे हे सांगावे लागले.

मला असे वाटते, की प्रत्येकाची या बाबतीतली 'कम्फर्ट लेव्हल' वेगवेगळी असते आणि हे सर्व समजावून घ्यायचा प्रत्येकजण

आपआपल्या बुद्धीने आणि शक्तीने प्रयत्न करत असतो. पण अर्थात प्रत्येक आईला आपल्या मुलांचे आयुष्य चारचौधांसारखे सरळ असावे, असेच वाटत असणार.

समीरने मला ‘त्याला बॉयफ्रेंड आहे’ हे तो ‘गे’ असल्याचे सांगितल्यावर काही दिवसांनंतर लगेच सांगितले होते. मी पुण्यातल्या आमच्या गच्चीवर आईबाबांच्या नकळत त्याच्या बॉयफ्रेंडशी म्हणजे अमितशी पहिल्यांदा फोनवर बोलले. जरा वेगळे वाटले. पण आम्ही मराठीतूनच बोलत असल्याने छान वाटले. हळूहळू अमितबरोबर फोनवर बोलून, चॅट करून ओळख वाढली. तो भारतात आला तेव्हा त्याच्याबरोबर भेट झाली. समीरला त्याच्याबद्दल किती प्रेम वाटते, दोघे एकमेकांची कशी छान काळजी घेतात, हे बघून बरे वाटायचे. शेवटी काय, मंगेश पाडगावकरांच्या ओळींचा आधार घेऊन म्हणावेसे वाटते—“प्रेम म्हणजे प्रेम म्हणजे प्रेम असते, त्यात ‘गे’, ‘स्ट्रेट’ असा काही भेद नसतो.”

माझी अमितची खच्या अर्थने ओळख अमेरिकेत आल्यानंतर वाढली. अमेरिकेत सुरुवातीला जरी समीर, अमित आणि आम्ही वेगळ्या राज्यात राहात असलो तरी ३-४ महिन्यांतून एकदा एकमेकांकडे जाणे व्हायचे. सुट्टीच्या निमित्ताने एकत्र राहायचो, त्या वेळेस अमितला जवळून बघता आले. ते दोघे एकमेकांबरोबर कसे छान रमतात हे अनुभवता आले. काही वर्षांनंतर एकमेकांची घरे जवळच आल्याने एकमेकांचा जास्त सहवास मिळाला. त्यामुळे केवळ तो माझ्या भावाचा बॉयफ्रेंड न राहता माझापण एक चांगला जवळचा मित्र झाला. माझ्या मुलांचे लाड करणारा आणि त्यांना शिस्त लावणारा त्यांचा लाडका ‘मामा’ बनला. सुरुवातीला मला ते एकमेकांबरोबर किती दिवस राहू शकतील याची काळजी वाटायची. पण हळूहळू जाणवले, की त्या दोघांचे एकमेकांवर खूप प्रेम आहे आणि ते नुसतेच अंधळे प्रेम नाही तर डोळसपणाने विचार करून घेतलेला तो योग्य निर्णय आहे.

माझ्या आईबाबांना अमितला अँकसेप्ट करायला जरा वेळ लागला. बाबांना तसा फारसा वेळ लागला नाही. उलट त्या दोघांचे आता खूप छान जमते. पण आईला अमित एक व्यक्ती म्हणून आवडत असली तरी आपल्या मुलाचा ‘बॉयफ्रेंड’ म्हणून स्वीकार करणे तिला जड जाते. तिच्या मनात कुठेतरी अजून आशा आहे, की ‘काहीतरी जादू होईल आणि समीरला मुलींबदल आकर्षण निर्माण होईल आणि तो मुलीशी लग्न करेल.’ तिला समजावून सांगणे एवढेच आम्ही करू शकतो आणि ते आम्ही सतत करत असतोच.

आईबाबांना नातलग काय म्हणतील? समाज काय म्हणेल? या गोष्टीचे प्रचंड दडपण वाटते आणि त्यांच्या वयाचा विचार करता काही अंशी ते खरेपण आहे. आज मी तरुण आहे, माझ्यात सळसळत्या रक्ताचा उत्साह आहे आणि मी अमेरिकेत राहात असल्याने माझ्यासाठी ‘लोकांचा विचार करू नये’ हे म्हणणे सोपे जाते. पण भारतात राहून मुख्यतः त्या पिढीतल्या लोकांना हे अवघड जाऊ शकते. भारतात हळूहळू बदल होत आहेत. आमच्या काही नातलगांना समीर-अमितबदल कळले आहे. बरेचजण खूप विरोध दर्शवत नसले तरी ‘सपोर्ट’पण करत नाहीत. आज आठ वर्षांहून जास्त ते एकमेकांबरोबर राहत असूनही त्यांच्या नात्याला सामाजिक मान्यता मिळणे भारतात अवघड आहे. त्यामुळे मला त्या गोष्टीचे खूप वाईट वाटते. बरेच नवराबायको एकमेकांमध्ये प्रेम नसताना केवळ मुलांसाठी किंवा लग्न झाले आहे म्हणून समाजासाठी संसार ओढत असतात; पण आज समीर-अमित कुठलेही सामाजिक बंधन नसताना, कोणाचीही जबरदस्ती नसताना या नात्यामध्ये आठ वर्षांहून जास्त काळ आहेत. यावरूनच त्यांचे एकमेकांवर किती प्रेम आहे हे कळते.

मला असे मनापासून वाटते, की माझा भाऊ ‘गे’ आहे, म्हणून जर कोणी माझ्याशी संबंध जोडत असेल तर माझ्यासाठी ते चांगलेच आहे. कारण शेवटी ज्या लोकांना आपल्याबदल मनापासून वाटते,

त्यांच्याशीच संबंध ठेवणे योग्य आहे. इतक्या वर्षात माझ्यात खूप काही बदल झालेले आहेत. सुरुवातीला मला 'गे' म्हणजे काय असते ते पण माहीत नव्हते आणि आज मी जगातल्या सगळ्या 'गे' लोकांना 'सपोर्ट' करते. समीर-अमितच्या नात्याला टक्केटोणपे खाऊन 'लोखंड जसे आगीतून सुलाखून निघते', त्याप्रमाणे अजून चकाकी आली आहे. समाजाचा हळूहळू या गोष्टीकडे बघण्याचा दृष्टिकोन बदलत चालला आहे. 'केस्ट प्रयत्न', 'समपथिक ट्रस्ट' यांसारख्या संस्थांच्या अथक प्रयत्नांमुळे 'पॉझिटिव्ह' वातावरण निर्माण व्हायला नक्कीच मदत होत आहे.

प्रत्येक नवीन बदलाला सामोरे जायला समाजाला वेळ द्यावा लागतो. सती जाणे, नवरा गेल्यावर केशवपन करणे यांना जेव्हा पहिल्यांदा आळा घातला किंवा स्त्री-शिक्षणाला जेव्हा पहिल्याने सुरुवात झाली, यांपैकी प्रत्येक गोष्टीला पहिल्यांदा काय झाले तर समाजाकडून कडाडून विरोध, पण काळाची गरज असल्याने या गोष्टी पुढे होत गेल्या. तसेच 'होमोसेक्शुअल' लोकांना अँकसेप्ट करणे ही आता काळाची गरज आहे आणि जरी याला आता विरोध होत असला तरी हळूहळू समाज ते स्वांकारेल याची मला पूर्णपणे खात्री आहे.

\*\*\*\*\*

## ६. श्रीमती शमा (शाहिदची आई)

मला दोन मुलं आहेत. एक मुलगा व एक मुलगी. मी आणि माझे पती दोघंही शिकलेलो असल्यामुळं या दोन्ही मुलांना आम्ही शिकायची खूप संधी दिली. दहावीनंतर दोघांनी एस.पी.कॉलेज(पुणे)मध्ये प्रवेश घेतला.

मुलाला पिक्चर बघायला खूप आवडायचं. त्याला स्वयंपाकाची आवड होती, चिकन छान करायचा. मुलगा शिक्षणात लहानपणापासून खूप हुशार होता. त्याला भाषा विषय आवडायचा. लहानपणापासून त्याला फळा आणि खडूची आवड होती. कधी त्याला म्हटलं, की ‘तुला काय खेळ आणू?’ तर म्हणायचा – ‘खडूचा डबा आण.’ शाळेत जर्मन विषय होता. त्याला ही भाषा खूप आवडू लागली.

त्याचे वडील नोकरी करत होते. त्यांची ‘लॉ’ची दोन वर्ष झाली होती. त्याच्या वडिलांची इच्छा होती, की मुलानी वकील व्हावं, पण तो म्हणाला, “‘मला जर्मन भाषेतच पुढे शिकायचंय. मला वकील नाही बनायचं.’” आम्ही दोघंही शिकलेलो असल्यामुळे आम्ही त्याच्या आवडीनुसार त्याला शिकू दिलं. मग माझी मुलगी म्हणाली, “‘मला ‘लॉ’ करायला आवडेल.’” आणि म्हणून तिने ‘लॉ’ला प्रवेश घेतला. मुलाला पुढे शिष्यवृत्ती मिळाली आणि तो जर्मनीला गेला.

पुढे त्याच्या वडिलांनी नोकरीचा राजीनामा दिला व ‘लॉ’ची डिग्री मिळवली. ‘लॉ’ पूर्ण केल्यावर सुरुवातीला ते असिस्टंट म्हणून होते, मग त्यांनी स्वतःची प्रॅक्टिस सुरू केली आणि ती चांगली चालली:

मुलगा जर्मनीवरून परत आला आणि काही काळानंतर तो दिल्लीला ‘JNU’ (जवाहरलाल नेहरू युनिव्हर्सिटी)ला शिकायला गेला. काही दिवसांनी तिथे मुलामुलांमध्ये काहीतरी प्रॉब्लेम झाला. त्याचा

फोन आला, की ‘इथे मुलामुलांमध्ये भांडणं झालीत, तुम्ही लगेच या. मला इथे शिकायचं नाही.’ आम्ही घाबरलो. विमानाने तातडीने दिल्लीला गेलो. तेव्हा त्याच्याकडून नाही, पण दुसऱ्यांकडून कळालं, की मुलामुलांमध्ये काहीतरी (क्लॅक्क) झालं आणि त्यातून भांडणं झाली. याचे वडील मला बाजूला घेऊन म्हणाले, “घाबरून जाऊ नकोस. हे आर्मामध्ये, होस्टेलमध्ये राहणाऱ्या मुलांमध्ये चालतं”, पण तेव्हा समजलं नव्हतं, की याला त्याची (क्लॅक्कची) जरूर होती का कोणी याच्यावर जबरदस्ती केली. मला वाटलं, की दिल्लीचे लोक बेकार असतात. त्यांच्याकडून याच्यावर जबरदस्ती झाली असेल आणि ते सहन न होऊन त्यानी आम्हाला फोन केला असेल. (नंतर कळलं, की हे रॅगिंग होतं आणि होस्टेलमधल्या एका मुलाकडून याच्यावर जबरदस्ती झाली होती.)

आम्ही ‘JNU’चा त्याचा प्रवेश रद्द करून त्याला परत घेऊन आलो. इथे आल्यानंतर त्यानी दुसरीकडे प्रवेश घेतला आणि परत शिकायला लागला. परत शिष्यवृत्ती मिळाली आणि परत एक वर्षासाठी तो जर्मनीला गेला. तोपर्यंत आम्हाला तो ‘गे’ आहे हे माहीत नव्हतं.

मला वाटतं त्याच्या वडिलांनी समजून घेतलं असतं. खूप उदारमतवादी विचारांचे होते. पण तो असा आहे हे त्याच्या वडिलांना शेवटपर्यंत कळालं नाही. ते अकाली वारले. ४९ वर्षांचे होते. त्यांना पहिला अटेंक आला तेव्हा रूबी हॉलला नेलं होतं. मग लीलावतीला बायपास झाली. आम्ही खूप खर्च केला. ते बरे होऊन घरी आले, पण तीन महिन्यांतच परत अटेंक आला. त्यांना लगेच रूबी हॉलला नेलं, पण ते गेले.

धर्मात सांगतात, की वडील गेल्यावर मोठ्या मुलीचं लग्न वर्षाच्या आत लागलं पाहिजे. त्याप्रमाणे मग मुलीचं लग्न झालं.

काही काळानंतर त्यांनि पहिल्यांदा त्याच्या बहिणीला सांगितलं, मग तिने मला सांगितलं. एकदम नाही सांगितलं, पण हळूहळू सांगितलं. नव्हकी ती काय म्हणाली मला नाही आठवत. तिने सांगितल्यावर मला ती ‘JNU’ला झालेली मुलामुलांची भांडणं आठवली. आम्ही अशा वातावरणात वाढलो होतो, की फक्त रस्त्यावर हिजडे पाहिले होते तेवढंच. समलिंगी लोक असतात हे माहीत नव्हतं. आमच्या मुस्लिम धर्मात या असल्या गोष्टी बोलल्या जात नाहीत. तरी माझ्या मुलीनी आणि मी त्याला समजून घेतलं. ती मला म्हणाली, “ममा, त्याचा काही दोष नाही. तो माझा भाऊ आहे, माझा त्याला सपोर्ट आहे.”

माझी इच्छा होती, की तो कोण आहे हे इतरांना, विशेषत: आमच्या नातेवाईकांना कळू नये; पण तो या विषयात काम करू लागला. तरीसुद्धा मी त्याला कोणाशीही याबद्दल बोलू नकोस असं काही म्हटलं नाही.

मागच्या वर्षी त्यानी एक फ्लॅट विकत घेतला, तिथे तो राहतो. मी रविवारी दिवसभर त्याच्याकडे जाते. इथून काही वस्तू तिथे न्यायच्या असतील तर त्या घेऊन जाते. तो मला आग्रह करतो, की ‘माझ्याकडे येऊन राहा’. पण खरं सांगू, मला नव्या ठिकाणी झोपच लागत नाही. या जुन्या घराची सवय आहे. आजूबाजूला सासू, जावा असे नातेवाईक आहेत. तिथेच मी रमते. मुलीच्या मुलाला सांभाळते, यातच वेळ जातो. माझा अर्धा जीव माझ्या मुलीत आणि अर्धा माझ्या मुलात.

मी एकदा त्याला म्हणाले, “तू कसाही असो, तू जसा आहेस तसा तू मला हवा आहेस, कारण तुझ्याविषयी माझी काहीच तक्रार नाही.” मला वाटते, की त्यात त्याचा काही दोष नाही, आईवडिलांचा काही दोष नाही. ही एक देवाची देन आहे, जी माझ्या पदरी आली. आम्ही मान्य केलं. जे सत्य आहे ते मान्य केलंच पाहिजे. त्याच्यात काहीच कमी

नाही. उलट तो परिपूर्णच आहे. माझा मुलगा देवासारखा चांगला आहे. (त्यांना एकदम कळू आळं.) आता त्याची पीएच.डी. दोन महिन्यात होईल. मला त्याचा खूप अभिमान वाटतो. तो स्वाभिमानी आणि चांगला आहे. माझ्याशी, त्याच्या बहिणीशी खूप चांगला वागतो. त्यांना आम्हाला कैधीही कोणताही त्रास दिला नाही. मी आयुष्यभर त्याच्या सुखदुःखात सहभागी राहीन. शंभर टक्के मी माझ्या मुलाला अँकसेप्ट केलंय. मी देवाचे आभार मानते, म्हणते की तू माझ्या मुलाला एवढे चांगले गुण दिलेस, की माझा पदर भरून गेला. (योग्योग्याने तेव्हाच 'अजान' ऐकू आळी) बघा मी सत्य बोलते.

\*\*\*\*\*

## ७. श्री. प्रलहाद (अक्षयचा भाऊ)

मला अजूनही तो दिवस अथपासून इतिपर्यंत स्पष्ट आठवतो. माझी ईंजिनिअरिंगची प्रवेश परीक्षा होती. परीक्षेचे केंद्र बडोद्याला होते. पुण्याहून जाण्यास निघालो. माझ्या मनात एक संदर्भ व प्रश्न खटकत होता. तो प्रश्न होता माझ्या भावाच्या कपड्यांच्या कप्प्यात सापडलेल्या ‘The Boyfriend’ पुस्तकाचा. राहून राहून तोच प्रश्न मेंदूत इथं तिथं आढळत होता. समोर ‘Chemistry’ चं पुस्तक होतं, पण डोक्यात मात्र नाना शंका-कुशंकांनी घर केलं होतं. शेवटी मुंबई आल्यावर न राहून दादाला विचारलंच-“कुणी दिलं रे तुला ‘द बॉयफ्रेंड’ पुस्तक?” पुस्तकाचं नाव माझ्या मुखातून ऐकताच तो थोडासा चमकला, पण नंतर सावरून म्हणाला, “एका मित्रानं दिलंय!” मी मान डोलावली व म्हणालो, “म्हणजे त्याने ‘आमचं’ जीवन कसं असतं हे तू समजून घेशील, असं वाटलं म्हणून दिलं का?” तो परत चपापला व उत्तरला, “होय !” मला काहीतरी नक्कीच ‘वेगळं’ आहे हे जाणवलं. तरी मी काही बोललो नाही आणि पुन्हा पुस्तकात आपलं डोकं खुपसलं.

गाडी आपली यथासांग वेळेप्रमाणे बडोद्यास पोहोचली. मी नवीन शहरात हरवून गेलो होतो. आम्ही मुक्कामासाठी हॉटेलात पोहोचलो. सावरासावर, आवराआवर झाली व मी थेट दादाच्या मोबाइल संचावर हात घातला व त्याचे ‘एसएमएस’ तपासू लागलो. त्यात मला काही ‘आक्षेपाहूं’ व ‘वेगळे’ मजकूर आढळले. दुसऱ्या दिवशी ‘आयुष्याला दिशा देणारी (!) व भविष्य घडवणारी (?)’ परीक्षा असल्याने मी पुन्हा पुस्तकात दंग झालो; पण मनात प्रश्नांचे काहूर घेऊनच!

दुसऱ्या दिवशी परीक्षा आटोपल्यावर मी हॉटेलमध्ये परतल्यावर पुन्हा दादाचा मोबाइल तपासला. तोच मजकूर, तेच ‘एसएमएस’. माझे मन भूतकाळात गेले. दादाचं थोडंसं अबोल असणं, आपल्या मतावर

ठाम असणं, स्वतःच्या ‘अस्तित्वा’बद्दल माझ्याशी बोलणं. त्याला असलेली फॅशनची आवड, स्वतःचं बौद्धिक वेगळेपण व स्वावलंबन जपण्याची आवड, आईशी असलेला त्याचा एक वेगळा ‘connect’, आईला काय होतंय, काय हवंय हे मनकवड्याप्रमाणे समजणं, कुटुंबाच्या जेमतेम असलेल्या आर्थिक परिस्थितीसाठी वडिलांना जबाबदार धरणं, आंग्लभाषेवर प्रेम असणं, विदेशात विशेषतः युरोप व अमेरिकेत ज्यायचं स्वप्न उराशी घट्ट बाळगणं, मला ‘आपण काय आहोत’ हे जमेल तेवढं स्वतःशीच तपासून पाहायला व भविष्याचा वेध घ्यायला सांगणं, आणि.... आणि एक न विसरता येणारा प्रसंग.... माझ्या मित्रांच्या घरी त्याची बहीण उगाच्च माझ्या भावावर घसरली व त्याला ‘बायल्या’ म्हणाली. माझं अगोदरच सणकी असलेलं डोकं सणकलं व त्यांच्या घरी मी खुर्च्या व चारपायीची आदळआपट करून शांत मनानं घरी परत आलो..... अशा व इतर अनेक आठवर्णीनी मनात गर्दी केली. अतिशय भावनिक झालो.

परतीचा प्रवास सुरु झाला होता; परंतु मन मात्र त्याच प्रश्नांची उत्तरं शोधण्यात गुंगलं होतं. अगोदर एकदा ‘पोर्नोग्राफी’ साइटवर दोन पुरुषांमधली ‘जवळीक’ दाखवणारे चित्र मला अनाहूतषणे दिसले होते. तेव्हा मनात विचार आला होता- ‘अरे, जगात स्त्रिया संपल्याच आहेत, असं वाटतंय का या दोघांना? की कदाचित हा अमेरिकेसारख्या पाश्चात्य देशातील भोगवादी बुझ्वा संस्कृतीचा परिपाक आहे?’ असे एक ना अनेक प्रश्न माझ्या मनात साचले. नंतर कुठेतरी माझ्या वाचनात आले, की अशा व्यक्तींना ‘गे’(समलिंगी) असे म्हणतात, तसेच बायसेकशुअल (उभयलिंगी आकर्षण असणारे) हा सुद्धा एक प्रकार असू शकतो.

आम्ही घरी पोहोचलो. प्रवासाने आम्ही दोघेही अतिशय दमलो होतो. मी जरासा अंग खाटेवर टाकून पडलो, पण अचानक उठलो व

दुसऱ्या खोलीत असलेल्या दादाच्या जवळ गेलो. थेट डोळ्यांत डोळे घातले व बेधडकपणे प्रश्न विचारला, “दादा, तू ‘गे’ आहेस का?” माझ्या या अनपेक्षित प्रश्नाने व पाविन्याने तो थोडासा दचकला, पण मग स्वतःला सावरून म्हणाला, “हो, मी गे आहे!” मी पुन्हा प्रश्न केला, “नक्की तू ‘गे’ आहेस? की बायसेक्शुअल आहेस?” तो पुन्हा उत्तरला, “मी ‘गे’ आहे!” आम्ही दोघांनी एकमेकांना घट्ट मिठी मारली. त्याच्या व माझ्या डोळ्यांत अश्रू होते. मी विचार केला- जर भारतीय संविधानाने प्रत्येकाला बोलण्याचं, फिरण्याचं, वास्तव्याचं, धर्मपालनाचंही स्वातंत्र्य दिलं आहे, तर मग ‘हे’ स्वातंत्र्य का नाही? मी दादाला म्हटलं, “दादा, तू अजिबात घाबरू नकोस. जे काही होईल त्यात मी तुझ्या पाठीशी खंबीरपणे व ठामपणे कायम उभा राहीन.”

दिवसांमागून दिवस जात होते. बहिणीचं लग्न झाल्याने तसेच दादाचं लग्नाचं वय झाल्याने त्याच्यावर सर्व बाजूंनी लग्नासाठी विचारणा व दबाव वाढत होता. साधारण २००८-०९चा सुमार असेल. मी प्रथम वर्ष अभियांत्रिकी शिकत होतो व दादाचे वय साधारण २७-२८ असेल. त्याच्यावर दिवसेंदिवस लग्नाचा दबाव वाढत होता. या वधूवर सूचक मंडळात नाव नोंदवूयात, त्या वधूवर सूचक मंडळात नाव नोंदवू असं घरच्यांचं चाललं होतं. त्याची अस्वस्थता मला कळत होती, जाणवत होती. लवकरच घरच्यांना सांगण्याची व समजवण्याची वेळ येणार हे मला त्या नकळत्या वयातही समजत होतं. मी त्यादृष्टीने नेटवर(इंटरनेटवर) माहिती मिळवायला लागलो. वेगवेगळ्या देशातले समलिंगी संबंध व विवाहासंदर्भातला इतिहास, कायदे व समकालीन चळवळी यात मी लक्ष घालू लागलो. भा.दं.सं. ३७७ कलम समजावून घेऊ लागलो.

अशातच माझ्या सगळ्यांत मोठ्या बहिणीने एकदा घरातल्या संगणकावर समलिंगी संबंधांसंदर्भातला एक मजकूर पाहिला. ती

संतापली व तिने आईला सांगितलं. तेव्हा मी तिथेच होतो. अगदी तिने आपला भाऊ 'तसा' तर नाहीना म्हणून गंगाजमुनाही ढाळल्या.

एके दिवशी मी आईला या विषयी कल्पना दिली. ती आतून हालली. तिने यथावकाश दादास त्यासंबंधी विचारणा केली. त्यानं थोडंसं धडपडत आईला सगळं सांगितलं. ती बन्यापैकी हादरली. कारण आपल्या मोठ्या, कर्तव्यगार, देखण्या, हुशार, कर्तृत्ववान मुलाच्या लग्नाबाबत अर्थातच तिने अनेक स्वप्नं पाहिली होती. त्या स्वप्नांचा चुराडा झाला होता. तिला सांभाळण्याची व समजावयाची गरज होती. एक आधुनिक, प्रगत विचारसरणीची, प्रतिकूल आर्थिक परिस्थितीशी एका लढवय्या वाघिणीप्रमाणे झुंज देऊन, आयुष्यभर अनेक टक्केटोणपे सहन करत मुलांना वाढवलेल्या, वयोमानप्रमाणे थकलेल्या आपल्याच आईस तिच्याहून थोड्या वेळापुरते का होईना वयाने व मनाने मोठे होऊन तिला समजावयाचे फारच मोठे आव्हान होते. मी स्वतःला सावरलं. मन घट्ट केलं. एके दिवशी संध्याकाळी मी महाविद्यालयातून घरी आल्यावर ती मला मिठी मारून रडायला लागली. मी तिला समजावलं “‘अग, ‘गे’ म्हणजे काही नपुंसक नाही.’” तर ती म्हणाली, “‘मग आपण त्याचं लग्न लावून देऊयात.’” मी म्हटलं, “‘शक्यच नाही. दुसऱ्यांच्या घरातील मुलीला फसवून किंवा तिला सांगूनसुद्धा हा प्रकार मी घडू देणार नाही. ते पूर्णपणे चुकीचं आहे. आपल्याच ताईच्या बाबतीत असं कुणी केलं असतं तर? नाही ना आवडलं असतं तुला? लग्न म्हणजे आयुष्यभर जपावं लागणारं एक सुंदर, नाजूक व पवित्र नातं. त्यात दोघांना एकमेकांविषयी आकर्षण, ओढ ही हवीच. या आयुष्यभराच्या नात्याची उभारणी जर खोटेपणाच्या व लपवालपवीच्या पायावर झाली असेल, तर कधी ना कधी ते नातं कोसळणारच. एका दुसऱ्या घरातील मुलीचं व त्याचबरोबर आपल्या दादाचं आयुष्य भरकटत जाणार व नंतर याचा शेवट वाईट होणार, हे पटतंय कातुला?’”

आई शांत बसून राहिली. तिने विचार केला व म्हणाली, “मग उतारवयात त्याच्याकडे कोण लक्ष देणार, कोण त्याची काळजी घेणार?” मी म्हणालो, “मी घेर्ईन. काळजी करू नकोस.” ती म्हणाली, “आणि तुझ्या लग्नासाठी दादाच्या ‘गे’ असण्यामुळे अडचण आली तर?” मी म्हणालो, “अशी एकतरी मुलगी नक्कीच असेल, की तिला माझ्या दादाला समजून घ्यायची कुवत असेल. दादा व तुम्ही सगळे माझ्या आयुष्याचा अविभाज्य भाग आहात. माझं लग्न जमवतानादेखील मी ही गोष्ट निदान माझ्या होणाऱ्या बायकोला निश्चित सांगणार.”

हे लिहिताना मला एक गोष्ट आवर्जून सांगावीशी वाटते, की या प्रवासात माझ्या ‘गे’ भावाने माझा मुलींकडे/स्त्रियांकडे बघण्याचा दृष्टिकोन थोडासा का होईना सुधारला व बदलला. कदाचित ‘गे’ पुरुषांना स्त्रियांच्या मनातले स्ट्रेटपुरुषांपेक्षा जास्त कळत असावे किंवा ते त्यांच्याप्रति जास्त संवेदनशील असावेत. यावरून असंही म्हणता येईल, की स्त्री-पुरुष संबंधातील गैरसमज दूर करून त्यांना जास्त जवळ आणण्यात त्यांचे ‘गे’ भाऊ, दीर, मित्र नक्कीच मदत करू शकतील.

\*\*\*\*\*

## ८. श्रीमती अनामिका (अक्षयची आई)

मुलाने तो 'गे' आहे हे सांगताच लहानपणापासूनचे सर्व दिवस माझ्या मनासमोर आले. त्याचे ते सौम्य, मृदुमुलायम वागणे, स्त्रीत्वाकडे झुकणारी त्याची मनोवस्था, कामाचा आढावा घेण्याची पद्धत आणि समज, इतरांच्या विशेषतः स्त्रियांच्या मनातील आचारविचार, त्यांच्या भावभावनांचा विचार करणे, मला काय हवे आहे ते चटकन ओळखणारा, या सर्व गोष्टींचा उलगडा एका क्षणात झाला.

त्याला एक मोठी बहीण आहे. तो तिच्या मैत्रिणींसोबत भातुकली, बाहुला-बाहुलीचे लग्न इ. मुलींचे खेळ खेळत असे. अर्थात तोही त्यात सामील होत असे. त्यांच्यासारखीच वागण्याची झलक त्याच्यात दिसायची.

त्याचे वडील पारंपरिक रितीरिवाजांवर गाढ श्रद्धा असणारे, ते जपण्यातच आनंद मानणारे, खूप सनातनी व कर्मठ ब्राह्मण होते. या त्यांच्या वागण्यातून अनेकदा इतरांच्या भावभावनांचा चक्काचूर होत असे. त्यामुळे मुलांच्या मनातही त्यांच्याबद्दल एक प्रकारची अढी, आकस निर्माण झाला. तो त्यांच्याजवळ जातही नसे. त्यांना पाहून तो खूप घाबरत असे.

त्यावेळी तो खूप अबोल होता. बहुतेक, घरातील वरील वातावरणाचा तो परिणामही असेल. पण आता तो सांगतो त्याप्रमाणे, तेव्हा त्याचे विचार तो आम्हाला सांगू शकत नव्हता. वडिलांसमोर अशा गोष्टी बोलणे अशक्यप्रायच होते. कारण इतरांना समजावून घेण्याची त्यांची विचारपद्धतीच नव्हती.

शाळेत असताना इतर मुले त्याला चिडवत असत, त्याची थद्वा करत असत; पण हे तो उघडपणे कोणालाच सांगू शकत नव्हता. त्यावेळी त्याच्या मनाला किती वेदना झाल्या असतील, त्याने किती त्रास सोसला

असेल, त्याच्या भावनांचा, विचारांचा किती कोंडमारा झाला असेल हे आता माझ्या लक्षात आल्यावर मला खूप वाईट वाटलं. पण हीच गोष्ट त्यावेळेला तो माझ्यासमोर बोलला असता तर मी ती स्वीकारली असती का? मान्य केली असती का? अशी अनेक प्रश्नचिन्हे माझ्या मनात निर्माण झाली.

मी एक मध्यमवर्गीय गृहिणी. सर्वसामान्यांच्या घरात जसे रितीरिवाज, पद्धती असतात, सणवार असतात ते प्रामाणिकपणे करणारी एक माता. मुलांचे शिक्षण, लग्न या जबाबदारीतून मुक्त होऊ पाहणारी. मुलीचे लग्न झाल्यावर सहजच मुलाच्या लग्नाचा विषय घरात निघू लागला. नातेवाईक, ओळखीपाळखीचे, हितचिंतक लग्नाबाबत खडा टाकून पाहू लागले. मीही सून येणार या आनंदाने मान ताठ करून पाहू लागले.

एके दिवशी माझ्या धाकट्या मुलाने मला अक्षयबद्दल सांगितले. मी भीत भीत अक्षयला विचारले, की तुला काही सांगायचं आहे का? त्याने प्रथम टोलवाटोलवी केली. मग म्हणाला, “मला तुझ्याशी बोलायचंय.”

त्याने जेव्हा तो ‘गे’ आहे हे सांगितले तेव्हा मी हादरले, चक्रावले. माझा लहान मुलगा माझ्या मदतीला धावला. त्याने ‘गे’ म्हणजे काय असते ते समजावून सांगितले.

मोठा मुलगा म्हणाला, “मला मुलांबद्दल आकर्षण, प्रेम वाटते. मग मी कशाला एखाद्या मुलीचे नुकसान, फसवणूक करू? तुझ्या समाधानासाठी, नातेवाइकांसाठी लग्न करून तिला घटस्फोट द्यायची वेळ आली तर तुला ते जास्त क्लेशकारक होईल.” माझ्या मनाची तयारी व्हायला वेळ लागला.

त्याच अवधीत त्याने ‘गे’ लोकांसाठी ‘प्रयत्न’ हा गूप सुरू केला. मी पण एकदोनदा त्यांचे सिनेमे, मीटिंगला गेले होते. त्यानंतर त्याने तेथे पालकांची एक सभाही आयोजित केली. तेथे पालकांनी आपापली

मनोगते व्यक्त केली. त्यामुळे इतर जे पालक होते तेही आपले अनुभव सांगण्यासाठी पुढे सरसावले.

आपले पालक आपल्या पाठीशी आहेत, या विचाराने विचारी भांबावलेली मुले जरा शांत झाल्यासारखी झाली. परिस्थितीने बावचळलेली मुले आसरा मिळालेल्या वासरासारखी निर्धास्त झाली.

मी मनात विचार करू लागले, की खरंच या मुलांचा काय दोष, अपराध? आणि पालकांचा तरी काय अपराध? तशी सर्वसामान्य स्त्री-पुरुषांची एकमेकांबद्दल आकर्षण असणारी आसकती याही मुलांमध्ये असतेच. फक्त फरक इतकाच, की त्यांना समलिंगी आकर्षण वाटत असतं.

पण आपला पुरातनवादी समाज हे मान्य करेल का? त्यांना आपल्यातलेच समजतील का? त्यांना रीतसर लग्न करून जोडप्यासारखे राहता येईल का? असा विचार सगळेच करणार नाहीत, पण ज्यांची मुले 'गे' आहेत त्यांनी तरी आपल्या पाल्याच्या पाठीशी भक्कमपणे उभे राहून त्यांना आधार दिला पाहिजे. तरच ही मुले समाजाला सामोरी जात आपले ईप्सित साध्य करू शकतील. थोडक्यात, आचारांची, विचारांची क्रांती होणे आवश्यक आहे, पण त्यासाठी काही काळ जाणे गरजेचे आहे.

या सर्वच मुलांना योग्य साथीदार मिळो अशी ईशाचरणी प्रार्थना करून मी त्यांना सांगू इच्छिते, "गर्व से कहो हम 'गे' हैं।"

\*\*\*\*\*

## परिशिष्ट अ - अधिक वाचन

1. इंद्रधनु- समलैंगिकतेचे विविध रंग  
लेखक : बिंदुमाधव खिरे
2. पार्टनर  
लेखक : बिंदुमाधव खिरे
3. मानवी लैंगिकता - एक प्राथमिक ओळख  
लेखक : बिंदुमाधव खिरे
4. अंतरंग - समलिंगी मुलामुलीच्या आत्मकथा  
संकलन : बिंदुमाधव खिरे
5. Queer : Despised Sexuality  
Arvind Narrain. Published by : Books for change
6. Less Than Gay  
Published by : ABVA (Aids Bhedbhav Virodhi Andolan) Dec. 1991
7. Humjinsi : A Resource book of Lesbian, Gay and Bisexual Rights in India. Compiled and edited by Bina Fernandez.  
India Centre for Human Rights and Laws, 1999
8. Queer Science- Use and Abuse of Research in Homosexuality.  
Simon Le Vay. MIT Press, 1996.

## परिशिष्ट ब - समलिंगी समाजाबरोबर काम करणाऱ्या काही संस्था

### 1. Samapathik Trust (समपथिक ट्रस्ट, पुणे)

• 1004, Budhwar Peth, Office No. 9,  
Rameshwar Market, Near Vijay Maruti Chowk,  
Pune- 411 002.  
Landline : (020) 64179112,  
Helpline : 9763640480 (Mondays 7 pm to 8 pm)  
Email : samapathik@hotmail.com  
Facebook Page : Samapathik-Trust-Pune  
Website :  
<http://www.samapathiktrust.wordpress.com>

### 2. The Humsafar Trust (द हमसफर ट्रस्ट, मुंबई)

Manthan Plaza, 3<sup>rd</sup> floor, Nehru Road,  
Vakola, Santacruz (East), Mumbai- 400 055  
Ph.: (022) 26673800  
Email : [humsafar@vsnl.com](mailto:humsafar@vsnl.com)  
Website : <http://www.humsafar.org>

### 3. Sarathi Trust (सारथी ट्रस्ट, नागपूर)

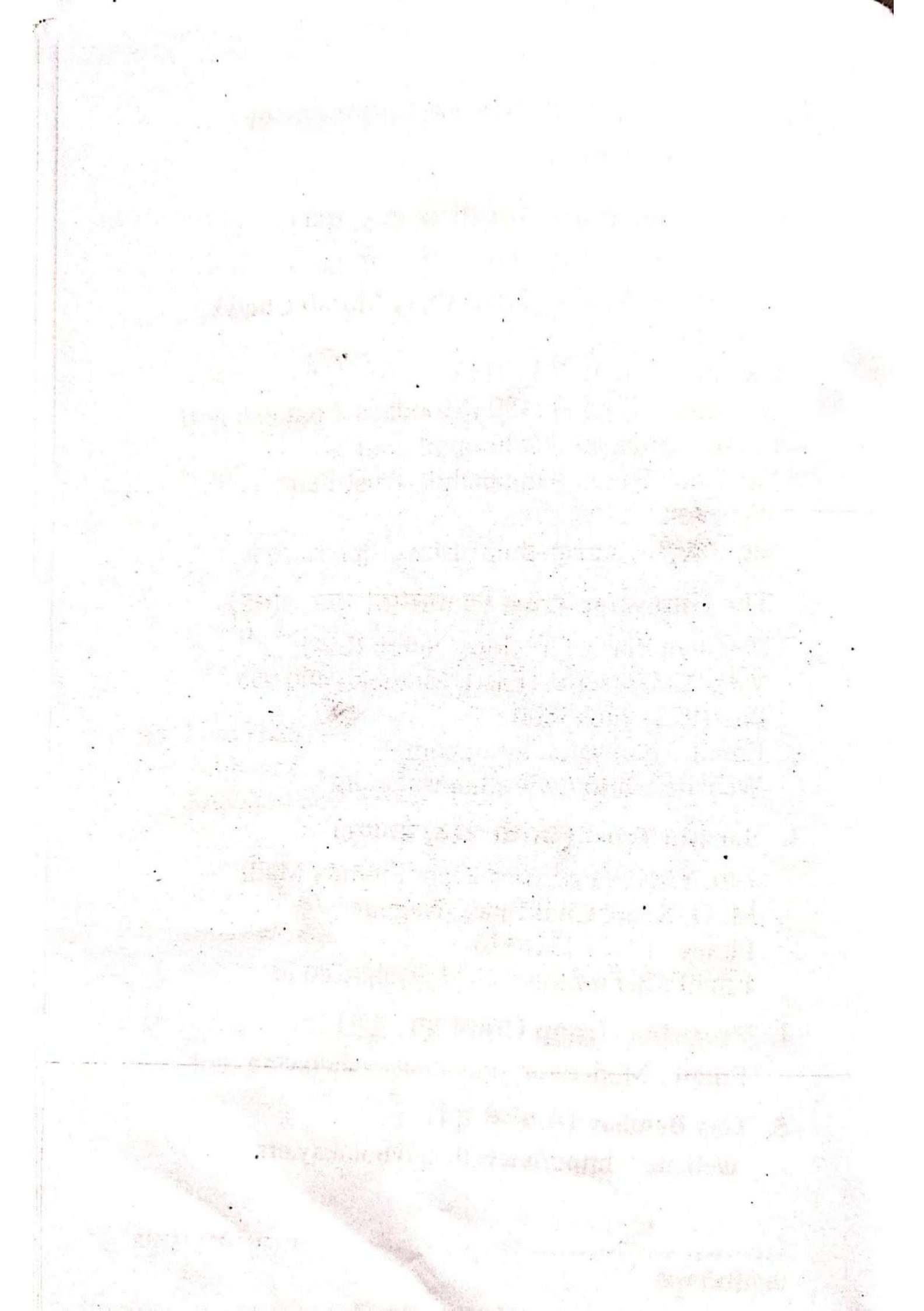
140, YMCA Premises, Opp. Eternity Mall,  
M. G. Road, Civil Lines, Nagpur  
Phone : (712) 2560376  
Email : [Sarathitrust\\_2005@yahoo.co.in](mailto:Sarathitrust_2005@yahoo.co.in)

### 4. Prayatna Group (प्रयत्न ग्रुप, पुणे)

Email : [Moderator\\_prayatna@yahoo.com](mailto:Moderator_prayatna@yahoo.com)

### 5. Gay Bombay (गे बॉम्बे ग्रुप)

Website : <http://www.thegaybombay.org>







“आता आपलं सुरक्षीत चालेल असं वाटत  
असतानाच मुलाने आपण समलिंगी आहोत ही  
धक्कादायक बातमी प्रथम बहिणीला व नंतर  
आम्हा दोघांना सांगितली. आम्ही हादरूनच  
गेलो. सर्वप्रथम आमच्यासारख्या पापभिरू व  
देवावर पूर्ण श्रद्धा असलेल्या माणसांवर असा  
प्रसंग कसा आला, आमचं काही चुकलं का ?  
असा विचार माझ्या मनात आला.”



समपथिक द्रृस्ट, पुणे